प्रकाशक—

नाथूराम प्रेमी

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,

हीराबाग, पो० गिरगाँव, बम्बई ४.

छट्ठी आवृत्ति

फरवरी, १९५३

मुद्रक—

रघुनाथ दिपाजी देसाई,

न्यू भारत प्रिंटिंग प्रेस,

६ केलेवाड़ी गिरगाँव, बम्बई ४

किताबको दोनों हाथोंमे पकड़कर लड़कीने कहा—
" देखो, यह फाड़ी, यह ! फाड़ूँ ? "
" नहीं नहीं नहीं ! . "
" फाड़ती हूँ ! "
" नही, देखो, नहीं ! "

लड़कीने देखा, मास्टर साहबसे यह नहीं होता कि उससे किताब छीन ले। यही तो वह चाहती है। उसने कहा--मैं तो फाड़ती हूँ।

मास्टरजीने देखा, लड़कीके हाथ जैसे सचमुच किताबके साथ जोर कर रहे है। वह उसकी तरफ झपटे। लड़की चौकन्नी थी—पलक मारतेमे फुदककर दूर जा खड़ी हुई।

" वाह ! ऐसे झपटे, फिर भी कुछ नहीं ! ...देखो, यह फटी यह ! "
मास्टरजीने कहा—तुम्हारे हाथ जोड़ूँ, फाड़ो मत !
लड़कीने कहा—अच्छा, जोड़ो हाथ।
मास्टर साहबने हाथ जोड़ दिये।

बालिकाने अपने दोनों हाथोंसे उन जुड़े हुए हाथोंको पकड़ लिया। किताब देते हुए कहा—'लो'। फिर कहा—
" अच्छा, अब सबक पढ़ाओ। "
मास्टरजी चुपचाप सबक पढ़ाने लगे।

४

जब पढ़ाई ऐसी हो, तो जीमें खलबली मचे कैसे नहीं ? मास्टरजीके जीवनमें थोड़ा मिठास आने लगा।

समझते थे हम एक गिरनारपर आ गये है। विचारों और धारणा-

ओंको पीट-पीटकर मजबूत करके, उनके ऊपर बैठकर, सोचने लगे थे कि अब डिगेंगे नहीं। जैसे जीवन भी सरल रेखाओंसे घिरा कोई पिण्ड है जिसे नाप-तोलकर निश्चित कर लिया जाय।

पर यह क्या हो गया! पल-भरमें यह कैसी गड़बड़ मच गई! अब तक तो कुछ न था। अपने उस चबूतरेपर बैठकर जीवनको और संसारको पढ़ने और सुलझाते रहनेमें कोई मुश्किल नहीं जान पड़ी। पर जैसे अब सारा संसार, और वह, और वह उनका चबूतरा,—सब एक झूलेमें झूलने लग गया। एक लहर उठी और उनके सारे अस्तित्वको डुबाने-उतराने लगी। सब कुछ मिट-मिटाकर सावनके इन्द्रधनुषके रंगोंमें लय हो गया—और उन रंग बिरंगे रंगोंमें झाँक-झाँककर देखती हुई दीखने लगी वह कट्टो! यह किसकी माया थी?

जरा-सी कंकरीने आकर सोये हुए विशाल जल-तलकी स्थिरता भंग कर दी। हलकी-सी हवाका झोंका जैसे जब जल तलको थपकता हुआ ता है, तो उस सारे तलमें एक सिहरन-सी होती है, उसमें कँपकँपी जाती है। वैसे ही किसी आवेगके मीठे झोंकेने उनके सोये के तलपर एक सिहरन-सी फैला दी। कटोरेको जैसे किसीने छू दिया, और उसके भीतरका पानी यहाँ वहाँ तक [illegible]प गया।

जीवनकी गहराईमेंसे जो लहर उठी हो, उसको मनुष्यके बनाये हुए धारणा-संकल्पोंके रेतके किनारे कहाँतक कबतक रोक सके हैं?

५

थोड़ा कट्टोसे परिचय करें।

वह चार वर्षकी विधवा है। गरीब माँ-बापकी है। बाप हैं नहीं, माँ

ही माँ है। वह माँके ऊपर बोझ है, और माँ जब तनिक झींकती है तो स्वर्गमें जा बैठे उसके निर्मोही बापको याद करती हुई अमुक शब्दोंमें यह सब पड़ोसियोंपर और अपनी उस लड़कीपर प्रकट कर देती है। फिर कुछ सगे भी हैं, पर वे हर वक्तके लिए नहीं।

उसका नाम? हमारे मास्टर-साहबने उसका नाम कट्टो रखा है। लड़की बुरा माने तो माने, हमारे लिए यही नाम यथेष्ट है। और यह नाम बिल्कुल निरर्थक नही है। मास्टरजीने रक्खा तो बहुत समझ बूझकर नहीं है, पर बहुत उपयुक्त है। कट्टो गिलहरीको कहते हैं। उसकी ठोडी गिल्हरीके मुँह जैसी है, वैसी ही नोकदार। उसके चेहरेसे भी वही गिलहरीका भाव टपकता है। झटपट यहाँ दौड़, वहां दौड़, इधर देख, उधर देख,—ये सब भाव उसमें है। गिलहरी जब किसी गोल मटरको लेकर, पिछले पैरोंपर उचकी बैठकर, अगले दोनों हाथोंसे मुँहमें दस बार देकर खाती है और आपको ताकती रहती है तो कैसी सुन्दर लगती है! ऐसी ही यह है और जैसे कट्टो, जरा चुटकी बजाओ, तो, चट दरख्तकी छतपर पहुँच जाती है, ऐसे ही मिनट भरमें यह कट्टो कहाँ भाग जायगी, कुछ पता नहीं।

पर, जगत्‌का वैषम्य देखो। एकके तो ये भाव दुनियाको खुश करते और प्यारे लगते हैं, दूसरीके लिए वे ही उसके पाप हैं। इस लड़कीकी इन बातोंको देखकर लोग बड़े कुढ़ते और नाखुश होते हैं।

लोग कहते हैं,—यह विधवा है कमनसीब। लड़की जान गई है, यह विधवा है, कमनसीब भी होगी। लेकिन फिर हँसने-खेलने, भागने-कूदनेका अधिकार वह क्यों नहीं रखती,—यह वह नहीं समझ पाती।

कालिमा सुन्दर नहीं है। उसके ओंठ ज़रा ज्यादे ताज़े और ज्यादे

खुले हैं और जैसे फैलते फैलते यकायक रुक गये हैं। चेहरेके एक एक अंगमें और भी दोष निकाले जा सकते हैं। पर वह इन सबसे निश्चिन्त है, और समझती है, वह असुन्दर नहीं है, रंग उतना उजला नहीं जितना साँवला है।

लेकिन आँखें ? जाने उनमें क्या है! वह एक क्षण कहीं टिककर ठहरतीं नहीं। यहाँ-वहाँ तिरती रहती हैं, पर ठहरती हैं, तो जैसे उसके भीतर तक चली जाती हैं। उन आँखोंमें जाने कैसा औत्सुक्य और जाने क्या है कि लगता जैसे उसे सब हरियाली है, सब निमन्त्रण है, सब चेतावनी है। उन आँखोंमे एक चमक है और जब पलके उनपर झुकती है तो यह चमक एक पतली-सी रेखामे आ इकट्ठी होती है और वहाँ जैसे आर्द्रता फैल जाती है

वे आँखें उसकी बड़ी कुतूहलपूर्ण और बड़ी हिंसामय हैं। उसके कुतूहलमें जैसे हिंसा है, और हिंसामे सिवा कुतूहलके कुछ नहीं है। वे आँखें जैसे कहती हैं कि वे सब देखती हैं पर नहीं देखती। उनके लिए कुछ भी वर्ज्य नहीं है।

इन आँखोंसे ही कह सकते हो सुन्दर नहीं हैं और इनके कारण कहा जा सकता है कि अत्यन्त सुन्दर है जैसे मानों सौन्दर्य छनकर आँखोंमे भर गया है।

६

मास्टर साहब सोचमें हैं। सोचते हैं,—यह जो एक नया मीठा-सा उद्वेलन उठा है और जो मुझे झुलाता-ललचाता है, मैं उसे बहला बहला कर पोसना शुरू कर दूँ तो परिणाम अनिष्टकर हो सकता है।

तभी बस्ता लेकर कट्टो आ पहुँची।

"कट्टो, आज पढना नहीं होगा। आजसे..."

कट्टोका झट-से एक हाथ मास्टर-साहबके माथेपर जा पहुँचा। यह हाथ थर्मामीटर है।

"क्यों, कैसी तबीयत है?"

यह मन क्यों खिसकने लगा? यह बुरी बात है। बोले, तबीयत ठीक है। पर आजसे. .

कट्टो मास्टरजीके ऊपर छोटी मोटी डाक्टरनी बन बैठी है। हाथ रखते बतला दिया, तबियत सचमुक ठीक ही है। शारीरिक कोई शिकायत है ही नहीं। बाकी जो होगा सो वह खुद ही देख लेगी। बोली—

"आज वह फिशरमैनवाला सबक है। सी-शोअर मायने क्या, और—और विलोज "

"सी-शोअर=किनारा। विलोज्=लहर। पर कट्टो, मुझे काम है, मैं जा रहा हूँ।"

"अच्छा जाना, मायने लिखा जाओ।"

"नहीं ."

"नहीं कैसी?"

ऐसे जोर-जबरका उल्लंघन कैसे हो? पढनेवाला जब पढके ही छोड़ेगा तो पढानेवाला क्या करे? फिर भी बोले—

"ऐसी कोई तुम्हारी जबर्दस्ती है?"

"जबर्दस्ती नहीं तो यों ही—।"

कट्टो तो गई, पर ऐसी बडी बात कहकर ख्याल उसे जरूर हुआ। भला पूछो इनकी जबर्दस्ती कैसी? उसने भी सोचा, "भला सो मेरी जबर्दस्ती कैसी?"

उसने अपनी उन उन्हीं मैदीली आँखोंसे ऊपर देखा। उन आँखोंमें कातर भावसे लिखा था : मानों तब तक ही जबर्दस्ती है, नहीं तो मैं कौन हूँ ?

मास्टरजीने देखा, कैसी ये आँखें हैं ! सोचा उन्हींको पाकर तो वह ऐसी बड़ी बात कह रही है। उसकी बात उन्हींपर आ पड़ी है। नहीं मानें तो—उन्होंके हाथ है। वही जज हैं, अभियोगकी फरियाद और कहीं नहीं जायेगी, उन्हींके पास आयेगी।—फिर वह अभियोगमें हाथ कैसे डालें ? बालाने अपनी बात कहकर उसकी रक्षाका सारा भार उनके ऊपर डाल दिया। अब वह बड़े असमजसमें पड़ गये। इस सिलसिलेको तोड़ना तो है ही, पर क्या इस तरह ? उनके आसरे जो जरा-सी बात कह डाली गई है, उसकी रक्षासे विमुख होकर ?—नहीं। उन्होंने कहा—अच्छा, आज पढ लो, कलसे ....

बात जब झटपट मान ली गई, तो कट्टो समझ गई, यह कोरा मान-मनौवलका तमाशा नहीं है। वह मास्टर साहबको खूब जानती है। मास्टरजीको देखकर और बातके ढगको देखकर उसे रंचमात्र [illegible]य नहीं रहा कि कल पढ़ाई नहीं होगी। आजका दिन उसकी [illegible]का, उसकी जबर्दस्तीका और उसके राज्यका अन्तिम दिन है। [illegible]न उत्साह बुझ गया। बड़े कडवेपनके साथ बोली—

"ओह, मैं क्या कह गई ! मैं कौन हूँ जो मेरी जबर्दस्ती हो !"

इस अप्रिय बातको सक्षिप्त करनेके लिए मास्टरजीने कहा—

"अच्छा, पढ़ो पढो।"

पढाई हुई। पर बिकुल सूखी। वृन्तच्युत फलकी तरह उसका मन टूटकर धूलमें लोट रहा है। मशीनकी तरह किताबमें आँख गाडे वह पढ रही है, पर क्या खाक-धूल पढ रही है, सो कौन जाने।

मास्टरजीका मन भी जैसे मिचला रहा है। जैसे रो उठनेकी तैयारीमें हो।

"कट्टो, अब जाना भी तो होगा।"

"जाना होगा? क्यों, कहाँ?—छुट्टियाँ खतम हो गईं?

छुट्टियाँ खतम नहीं हो गईं, खतम की जा रही हैं। और इस तरहसे कि वह अब लौटें ही नहीं। पर कट्टोसे यह समझाकर कैसे कहा जाय?

"हाँ, छुट्टियाँ भी खतम होंगी ही।"

"पर अबके बड़ी जल्दी—!"

"हाँ।"

यह दबा-सा 'हाँ' सुनकर कट्टोने कहा—

"यह क्या बात है? छुट्टियाँ खतम हो गई हैं तो जाओ। ऐसे क्यों होते हो?"

सत्यधनने सँभलनेका यत्न करके कहा—

"कहाँ!—कैसा भी तो नहीं हो रहा!"

"तो कब जाओगे?—कल?"

कल ही चल देना पड़ेगा, सो तो न सोचा था। पर अब देखा, नहीं भी कैसे करें। बोले—हाँ।

"किस वक्त? सवेरे या शामको?"

"तीसरे पहर।"

"अच्छा, मैं जब तक न आऊँ तब तक मत जाना। कहो, नहीं।"

"नहीं।"

कट्टो फिर चली गई और मास्टर-साहब पड़ गये। कट्टोका ध्यान आने लगा। सोचते सोचते, प्रेम तो क्या कहें, पर कट्टोपर रह रह कर

करुणा उठ आती थी। वह कैसे अपने वर्तमानमें मग्न है जब कि भविष्य शून्य, निर्जन और अँधेरा है। जब इस भविष्यमें कट्टो पहुँचेगी, तो उसका क्या हाल होगा ? पर, देखो, कैसी लड़की है। इसकी चिन्ता भी उसे छू नहीं गई। क्या कुछ हो सकता है कि यह भविष्य उलट जाय ? क्या वह जीवनके अंतिम दिन तक इसी तरह उनसे पढ़ने आती नहीं रह सकती ? उसकी खातिर वह खुद इसी तरहके बिन ब्याहे मास्टर बने रह सकें तो कैसा ? लेकिन...कल तो जाना है!

क्यों जाना है ? नही जाना। नही जाते। होने दो जो हो, भागकर क्यों जायँ ?

तभी डाकिया डाक दे गया। बिहारीकी भी चिट्ठी आई। वह फेल हो गया। उसके बाबूजी परिवारके साथ काश्मीर जा रहे हैं। बहुत जोर दे रहे है—तुम चलो। चलना पड़ेगा। टाल नहीं सकोगे। टालोगे तो कसम। गरिमाका भारी अनुरोध है। क्या उसकी भी रक्षा नही करोगे ? अमुक दिन जा रहे हैं, उससे पहले ही मिल जाओ।

यह चिट्ठी इसी वक्त क्यों आकर पहुँची ? क्या भाग्यके इशारेपर ? है तो यही सही।...लो, कट्टो, मैं सचमुच चलता हूँ।

बिहारीको चिट्ठी लिख दी गई। अगले दिन सवेरा हुआ, दो पहर टल गई। चल देनेका वक्त अब हुआ ही चाहता है,—पर कट्टो नहीं आई! भीतर ही भीतर उत्कण्ठासे प्रतीक्षा कर रहे थे,—न आई तो जी मसोसने लगा। लेकिन सोचा, मुझसे तो पक्की वही है, फिर मैं ही क्यों कच्चा बना रहूँ ? हठात् सूझा—आये न आये, वक्तसे थोड़ा पहले ही चल दो।

इधर कट्टोको बहुत-सा काम करना था। पहले तो बहुत-सा रोना था, क्योंकि भीतरसे जीको ऐंठता हुआ जो क्षोभ उठा है, उसे बहाये

बिना वह और कुछ भी नहीं कर सकती। फिर एक तकिया बनाना था। अबके एक तकिया बनाकर मास्टर साहबको देगी। काम छोटा-मोटा है नहीं, फिर बड़े यत्नसे किया जा रहा है। दोपहर बीत रही है तो क्या, यह भी अब खतम हुआ। मेरे बगैर वह जा तो सकते नहीं, वह निश्चित है और एक मोनोग्रामपर झट झट सुई फेर रही है। उस मोनोग्रामका भी इतिहास है। पर उस इतिहासको सुनायगी तो देर हो जायगी। और मास्टर साहब कहीं चले न जायँ!

काम खतम हुआ। तकियेकी तह करके, एक कागजमें लपेटकर कट्टो उछलते मनसे चली। घर पहुँची, पर मास्टर साहब कहाँ?

यह क्या हो गया? उनकी जबर्दस्तीके दिन क्या बीत गये?—जरा-सी बात भी अब उसकी नहीं रखी गई? अभी तो आ रही थी, ठहर जाते तो क्या होता? वह रोई नहीं, सुन्न हो गई।

इधर मास्टर साहबकी साहित्यिकताने बीचमें दखल दे डाला था। होना है वह तो होना ही है, पर कटुआपन क्यों रहे? हँसी खुशी सब क्यों न हो जाय? सोचा—ताँगेपर बिस्तर पहुँचा आयें, आप घरसे जरा दूर दुबके खड़े रहें और जब कट्टो सोचमें मर रही हो, तब परमात्माकी विभूतिकी तरह आविर्भूत हो जायें।

कट्टो लकड़ीके ठूँठकी नाईं काठ-मारी खड़ी थी। यह कैसी आवाज आई—'कट्टो! और उसके साथ हँसीका ठहाका!'

बिजलीकी तरह क्षण भरमें जीवनकी चुहलकी लहर उसके सारे शरीरमें फैल गई।

रोमाच हो आया, शरीर उछलने लगा।

"तुम बड़े दुष्ट हो!"

"यह कागजमें क्या है?"

"नहीं दिखाती, नहीं देती।"

"मैं भी देखूँ कैसे नहीं दिखातीं, कैसे नहीं देतीं?"

"मुझसे लड़ोगे? बड़े अर्जुन हो!—लो।" देकर वह तो घरके भीतर भाग गई।

खोल खालकर देखा। ओहो, बड़ी कारीगरीका काम है! और यह!—यह मोनोग्राम तो कहीं मैंने ही बनाया था। अब यह रेशमके धागोंसे गूँथ-गाँथ कर मुझे ही दिया जा रहा है! इस भयकर चीजको अपने साथ कैसे रखूँ? इस गूँथनेके साथ न जाने और क्या गूँथ दिया गया है,—सो उसका अधिकारी मैं कैसे बन जाऊँ?

भीतर कमरेमें कट्टोको ढूँढ पाया।

"लो, अपनी कारीगरी लो। मैंने कुछ उचाट नहीं लिया।"

"मैं नहीं लेती।"

"मैं क्या करूँगा?"

"क्या करोगे? क्यों, पास रक्खोगे, अच्छी तरह रक्खोगे। नहीं रख सको तो फेंक देना। यह फेर देनेके लिए नहीं है।"

कॉमेडी तो गड़बड़ हुई जा रही है। यह विदा ट्रैजिक हो गई तो कसकेगी। कहा—

"यही सही, साहब। रक्खेंगे।—बस?"

लेकिन इन बातोंमें स्त्रीकी आँखोंको धोखा देना सहज नहीं है।

"रक्खो तो, नहीं रक्खो तो .."

"फिर वही! रक्खेंगे, रक्खेंगे।...लेकिन अब चला।"

"जाओ!"

इस "जाओ" में यह व्यथित आह-सी क्या बजी? यह फिर गड़बड़। कहनेके लिए कहा—

"सबक पक्का करती रहना। आऊँगा, तो इम्तहान लूँगा। भला ?"

"अच्छा।"

"अच्छा तो कट्टो, चलूँ ही।" कहते हुए उसका एक हाथ अपने हाथोंमें ले लिया और कहा—

"ऐसी अच्छी कट्टो हो! खूब सबक याद करोगी। और मुझे भी याद करोगी—है न ?"

ज्यादह देर लगाना ठीक नहीं। मन धँसता जा रहा है। जेबसे सुनहरी जिल्दकी एक छोटी-सी किताब निकालते हुए कहा—

"लो अपने तकियेका इनाम।"

उन्होंने चुप चुप दिया और लड़कीने चुप चुप ले लिया।

वह चल दिये, वह खड़ी रही।

घर आई। किवाड़ बन्दकर किताब खोली। भीतर वही मोनोग्राम बना है। यह कैसा सुन्दर है, मेरा कैसा भद्दा था!

ओ मास्टर, तुम कहाँ गये ?

७

मास्टर साहब काश्मीरकी राहमें हैं। बिहारी साथ है, बिहारीकी माँ और बाबूजी, छोटा भाई छह बरसका विपिन, और गरिमा। गरिमा नाम भी हमारे मास्टर साहबका ही रक्खा हुआ है। जैसे उस अपने गाँवकी गँवई लड़कीको देखकर इन्हें 'कट्टो' सूझा वैसे इसे देखकर पहले ही पहले गरिमा सूझा था। 'गरिमा' इनके मुँहसे निकला कि इनके और बिहारीके बीच लड़कीका वही नाम पड़ गया। फिर तो हर भरके लिए नाम ही वह हो गया।

कालिजके दूसरे सालमें ही बिहारी सहपाठी है। बिहारीको यह

इतने भाये कि बिना देखे ही घर-भर इनको जान गया। शुरू बार ही जब घरमें घुसकर वाबूजीको प्रणाम किया तभी इन्होंने अनुभव किया कि वह पहलेसे ही उनके आत्मीय बन गये है, दूसरे नही हैं। माँके मुँहसे जब निकला 'बेटा' ही सबोधन निकला। विपिन तब नन्हों था और गरिमा खिलनेपर आ रही थी।

वाबूजी वकील हैं। हैसियतके दुनियादार आदमी है। सत्यधनको जानकर गरिमाकी चिन्ता करना उन्होंने छोड़ दिया। घरमें एक बार कहा—

"देखती हो? अब लड़कीको खूब पढ़ानेका काम ही रह गया है। आगेकी चिन्ता परमात्माने हमारे ऊपरसे उठा ली है।"

पर सत्यधनके क्या शेक्सपियरसे कम आँखे हैं? जूलियटसे कमका स्वप्न किसी तरह नही देख सकते। उनका मन किसी तरह नहीं मानता कि शकुतला होना अब बन्द हो गई हैं। होती हैं, पर भाग्य चाहिए। और वह अपने भाग्यको हेय माननेको तैयार नही है।

गरिमा बडी अच्छी लड़की है। पढनेमें तेज है, बात करनेमें चतुर, ...में लुभावनी है। और जब खिलेगी तो बात ही क्या!—लेकिन—

... ...ँह!

बी० ए० करनेके बाद बाबूजीने बड़े चक्करसे इस बातको बाँधना शुरू किया।

"सत्य अब क्या करोगे?"

"अभी तो वकालत ही पढना है।"

"ठीक। . तुम्हारी माँकी तो उमर अब काफी हो गई होगी।"

"हाँ—जी।"

"तुम्हे अब उनकी चिन्ता करनी चाहिए।"

सत्यने कुछ 'हाँ-हूँ' कर दिया। बाबूजीने कहा—

"गिरीजा पढ़ना तुमने देखा?"

"सुनते हैं, खूब तेज है।"

"हाँ, अच्छी है। म्यूज़िकमें इनाम पाया है। अब नौवींमे है।"

सत्यने यहाँ भाग छूटना चाहा।

"हो न हो, कभी कभी उसे कुछ बता दिया करो। बिहारी तो बड़ा नट-खट है। वह तो कुछ करता धरता नहीं।"

"अच्छा।"

सत्यने सोचा, जितनी देर लगती है, उतनी ही मेरी मुश्किल बढ़ती है। उसने मामला साफ कर देनेके लिए कहा—

"माँ ब्याहके लिए जोर दे रही हैं। मैं कह चुका हूँ, वकालतसे पहले ब्याह करना पैरोंमें कुल्हाड़ी मारना है। ये आखिरी साल हैं, इनमें पूरी मेहनत लगानी चाहिए।"

"सो तो ठीक" वकील-साहबने कहा, "पर माँका कहना भी गलत नहीं है। उन्हे भी तो सेवाके लिए कोई चाहिए न?"

"पर वकालतसे पहले तो मैं कुछ कर नहीं सकता।"

"सो तुम्हारी मर्जी।"

बातको इस तरह काटकर थोड़ी देरमें वह विदा ले गया।

वकील साहब कभी युवा रहे हैं, और दुनिया देखी है। समझ गये, अभी लड़का स्वप्न देख रहा है। शेक्सपीयरकी पढ़ाई अभी बहुत ताजी है। ज़रा पढ़ाई ठंडी होने दो, स्वप्न-जगत्की जगह यह ठोस जगत् आने दो, तब वह अपने आप राहपर आ जायगा। जल्दीकी ज़रूरत क्या है?

[illegible] निबटी निबटी बात बाबूजी अब उठाना चाहते हैं। इसीलिए

काश्मीर-प्रवासमे उसे इस तरह आग्रहपूर्वक बुलाया गया। जब वह झट आ गया, तो बाबूजीने देखा, लक्षण बुरे नहीं हैं। उन्हे क्या मालूम बीचमें और कुछ घट चुका है।

गरिमा इंट्रैंस भी पार कर चुकी है, और किशोर-वय भी। अब यौवन वसन्तकी देहलीपर खड़ी उस वसंतोद्यानकी झाँकी ले रही है। अभी देख रही है। वसन्तकी वायु झोंके ले ले कर आती और उसके शरीरपर अपना नशा फेंक जाती है। थोड़ी देरमें दहलीजसे उतर कर वह आगे बढ चलेगी, बह चलेगी। अभी अभी तो वहीं चुप-चाप खड़ी सब कुछ देख रही है। चलनेसे पहले वह अपनेको चाहसे भरपूर भर लेगी, जिससे यह चाह उसे यौवनके कालमें उड़ाये ले चले, उड़ाये ले चले।

रेल उन्हें पहाड़की हरियाली उपत्यकाओंसे ले जा रही है। बिहारी और सत्य जागते हैं,—बाकी सो रहे हैं। गरिमा सब कुछ अपनी पलकोंमें मींचे, पासवाली बेंचपर निश्चेष्ट सो रही है। साँस बँधे विरामसे जा रहा है। परिधान,—बस कहीं कहींसे तनिक ही अस्त व्यस्त है। ऐसी सुखस्पर्श वायुमें नींद कैसी प्यारी लगती है! और उस नींदकी जागते हुए चौकसी करना भी कैसा मीठा लगता है!

सत्यने सोचा, एक यह है जिसका भविष्य कैसा निश्चित सुखी है, जिसने जीवनमें आराम ही पाया और विलास ही देखा है। एक वह है, कट्टो, जिसे केवल 'न'कारकी मूर्त्ति बने रहकर जीवन काट जाना है। यह कैसा वषम्य है! फिर सोचा, अब मैं क्या करूँगा? क्या मैं इस वैषम्यको बढ़ाऊँगा? या—या साम्य बढ़ाऊँगा?

अब इस प्रकारके तर्कमे, और पहले ठीक उलटे कारणसे सत्यने देखा, उसका और गरिमाका योग न हो सकेगा।

फिर वह कट्टोके बारेमें सोचने लगा। सोचा, क्या दुखियोंके प्रति हम निश्चिन्तोंका कोई कर्तव्य नहीं है? क्या संसारका सारा सुख दबिया लेना अन्याय नहीं है उनके प्रति जिन्हे उसका कण भी नहीं मिल पाया है? और कुछ नहीं तो उनके खातिर क्या हम अपना सुख कम नहीं कर सकते? ... कट्टोको इसी तरह रहने देकर मैं खुद कैसे विलास-गर्तमें डूब सकता हूँ?

तभी उसे एक समाधान दीखा। वह प्रसन्न हुआ। अवश्य यही होना चाहिए। कट्टोको विधवा कहना 'विधवा' शब्दकी विडम्बना है। विधवा हो, तो भी क्या? उसका अवश्य विवाह होगा।

इस समाधानसे उसे चैन मिला। उसका विवाह हो चुकेगा, तभी मैं विवाह करूँगा, पहले नहीं।



काश्मीर आ गये। वहाँ उसने विहारीको पकड़ा। विहारी बड़ा निर्द्वन्द्व आदमी है। बचपनसे ही उसे आराम और पैसा मिला है, इससे इन दोनों चीजोंसे उसका मन जैसे भरा हुआ है। वह इनकी जरा भी परवाह नहीं करता। वह जिन्दगीमें रोमान्स चाहता है। जोखमको वह प्यार करता है, और ढूँढता है कि जोखमके काम उसे मिलें। उसके बाबूजी उसके इस स्वभावसे अप्रसन्न नहीं हैं। सीधी-भोली-चिकनी दुनियादारी, जहाँ गड्ढोंसे बच-बचकर सिर्फ पक्की बनी-बनाई सड़कपर ही चलकर सन्तोष मान लेना पड़ता है, कोई बहुत श्रेयकी चीज नहीं है,—यह बाबूजीने अपने सफल जीवनसे समझ लिया है। उन्होंने प्रतिष्ठा भी कमाई, रुपया भी पैदा किया,—पर कुछ नहीं। जीवनमें कभी कुछ मजा नहीं पाया। इससे वह विहारीको खूब रुपया उड़ाने देते हैं और खूब मनमानी करने देते हैं।

इसीलिए बिहारीका ब्याह नहीं हुआ। पिता इसके सम्बन्धमें चिन्ता नहीं करना चाहते। आदमीकी तरह दुनियामें बढ़कर वही खुद अपनी जीवन सगिनी ढूँढ़ ले। उनका विश्वास है, बिहारी जैसे-तैसे एक ढगके साथ दुनियामें अपनी राह तै कर जायगा,—उसके बारेमें ज्यादा परेशान होनेसे काम न चलेगा। उसको कोई बहू ला दी जायगी, तो उससे उसकी कभी न निभेगी, और खीझखीझ कर वह अपनी जिन्दगीको छुज कर लेगा।

लेकिन गरिमाके बारेमें वह बड़ी सतर्कता और सोच विचारके साथ आगे बढ़ते थे। इस तरह उसकी ओरसे लापर्वाह वह अपनेको कभी न बना सके। समझते थे, व्यक्तित्व अलग अलग तरहके होते हैं। उनकी पूर्णता भी अलग राहसे ही मिलती है।

इसी बिहारीपर सत्यने अपनी आस बाँधी थी। बिहारी कुछ करना चाहे,—अगर वह बुरा न हुआ, फिर चाहे कितनी ही जोखमका हो,—तो बाबूजी उसमें कभी रुकावट नहीं डालेंगे, यह सत्य जानता उसने बिहारीके मनमें सावधानीसे कट्टोके लिए गुदगुदी पैदा की। बड़ी जल्दी खिंच जानेको तैयार रहता है। बुराई उसमें नहीं चाहिए, फिर तो किह रीसे जो चाहे काम लो। डूबनेको बचानेके वह किसी झिझकमें पड़कर देर नहीं करेगा,—फौरन कूद पड़ेगा। स कदम दूर कूदनेके लिए सुगम किनारा होगा, तो भी वहाँ जानेको ठहरेगा नहीं। और जितना ही काम मुश्किल होता है, उतना ही तत्परता और आनन्दसे वह उसमें कूद पड़ना चाहता है।

कट्टोकी बात सुनकर उसका मन उछला। सत्यने इस ढगसे बात रक्खी थी कि जैसे एक लड़कीके उद्धारका सवाल है। परिणाम जो

होगा तो हो, बिहारी तैयार है। बिहारीने यह कह दिया। पर साथ ही पूछा—

"तुम्हीं क्यों नहीं बढ़ते?"

सत्य अकचकाया।

"मैं? . न-अ। मैं कैसे कर सकता हूँ? तुम जानते हो, हो सकता है मेरे सम्बन्धमें यह शुद्ध परमार्थका काम न हो।"

बिहारी इस उत्तरसे प्रसन्न हुआ। वह जानता था सत्य अब तक भी कठिन गरिमाके सम्बन्धमें पूर्ण अनुकूल नहीं हुआ है। इस कारण सत्यकी बातपर उसे विश्वास हुआ, और उसके लिए सत्यको उसने धन्यवाद दिया।

९

सत्यके सिरसे बोझ टला। उसे विश्वास था कि कट्टोको मनाना कठिन न होगा और जब यह बात हो जायगी, तो उसे अपने सुखसे नाराज रहनेका मौका न रहेगा। वह भी फिर गरिमासे विवाह कर लेगा। और फिर . लेकिन तब तक?—तब तक नहीं।

आखिर एक दिन बाबूजीने बात छेड़ी ही।

"सत्य, एक बात कहनी है। अब तुम्हें विवाहके लिए तैयार हो जाना चाहिए।"

बिना भूमिकाके बात इस तरह दो-टूक सामने डाल दी गई, तो वह चकचकाया। कहा—

"पिताजी, मैं बकालत नहीं कर रहा हूँ।"

'पिताजी' सम्बोधन जीवनमें बहुत कम बार उनके कानोंमें पड़ा है। सब 'बाबूजी' ही कहते हैं। इसलिए, वह बड़ा प्यारा लगा।

सत्य न जाने किस झोंकमें यह कह गया था। पिता बोले, "जानता हूँ।"

सत्यको अचरज हुआ, "आप जानते हैं ?—कैसे ?"

"होशियार-बहादुरकी बात मेरे कानों तक पहुँची है।"

"फिर भी आप कहते हैं ?"

"हाँ, कहता तो हूँ। क्या वकालतकी वजहसे मैं गिरीको देना चाहता हूँ ? समझ लो, वकालतको नहीं, दूँगा तो मैं तुम्हें गिरीको दूँगा। यह भी तो हो सकता है कि वकालत चले ही नहीं ?"

बाबूजीके इस विश्वासपर सत्यका हृदय गद्गद हो गया। उसने भी अपना दिल खोल देना चाहा—

"एक बात है, पिताजी। गाँवमें एक लड़की है। मेरे साथ साथ बढ़ी है। उसका कुछ ठीक हो जाय तो मैं शादी करूँ। मैं तो इधर भोग-विलासमें पड़ जाऊँ, और वह मेरे घरके पास झुरती झुरती रहे,—न, यह मुझसे न होगा।"

बाबूजी ऐसी बातोंको पसन्द तो करते हैं, पर सनक समझते हैं। "तुम ऐसी साधुता कहाँ कहाँ करोगे ? जगह जगह उसकी जरूरत है। और जहाँ पता चला नहीं कि तुम्हारी साधुतापर दावा करनेवाले सैंकड़ों लोग इकट्ठे हो जायेंगे। इससे अच्छा है, ऐसी मीठी मीठी साधुताओंकी बहकमें आओ ही नहीं। यह बाबूजीकी राय है। पर कोई अच्छी-सी बेवकूफी करना ही चाहता है तो करे। बोले—

"तो उसके बारेमें क्या करोगे ?"

"कहीं उसका ब्याह हो हुआ जाय तो ठीक है।"

"अच्छा।"

और अच्छा कहकर बाबूजी चुप हो गए। समझ गए, इस परामर्शके

कामके लिए बिहारीको ही पकाया जा रहा दीखता है। बिहारीको इसमें सन्तोष मिलता है तो इसमें भी कुछ हर्ज नहीं है। पर जान पड़ता है, मुझे थोड़ी देर और भुगतना है। लड़केका थोड़ा-सा पागलपन और ठंडा होना बाकी है।

इसमें उन्हें शंका न थी कि लड़का घूमघामकर आ गया वहीं, जहाँ वह समझते हैं। आँधी आती है, बड़ी जोरकी आँधी। मालूम होता है, सारी दुनिया उड़ जायगी। लेकिन कुछ रेत और फूसके सिवाय कुछ नहीं उड़ता। आँधी आकर चली जाती है, और दुनिया अपने काममें लग जाती है। इसी तरह यह बिना पचे विचारोंका तूफान आया है। गुजर चला जायगा, और सत्य ढगसे लग जायगा।

१०

काश्मीर स्वर्ग है और काश्मीरका शालामार स्वर्गोद्यान। उसी स्वर्गोद्यानमें एक बड़ेसे चिनारके पेड़के नीचे सब बैठे हैं। बाहर झीलमें उनका बजरा ठहरा है।

जहाँ बैठे हैं, मलमल सी दूबका कालीन दूरतक फैला हुआ है। सामने ही नहर है। किलोल करती बह रही है, मछलियाँ उसमें खेल रही हैं। वह नहर बहती बहती फिर संगमरमरके प्रपातपर जा उतरती है, धीरे धीरे बल खाती, इठलाती और खेलती हुई। मानो शाहंशाह शाहजहाँकी सौन्दर्य-कल्पना-धारा जलमय होकर, लहरियोंका शुभ्र-नील हल्का वसन पहनकर, हमें अपनी अठखेलियाँ दिखला रही हो।

[illegible]की इस मनोरमताको गरिमा देख रही थी और आँखोंकी राह खींच कर अपने हृदयपर चित्रित करती जाती थी। उसको ऐसा मनोरम चित्रपट कहाँ मिला होगा!

पानी उधर खेल रहा है, विपिन इधर इतनी दूर कैसे चैनसे बैठा रह सके !

"दादा, हम सैर करेंगे।" उसने सत्यसे कहा। वह सब बात सत्यसे ही कहता है, क्योंकि सत्य उसकी बात टालता नहीं।

उँगली पकडकर सत्य उसे सैर कराने लगा। सब दिखलाया। जब लौटा तो विपिनकी दोनों जेबें और हाथ पत्थरों, फूलों और पत्तोंसे भरे थे।

यह भरा खजाना दिखानेके लिए दौडा हुआ विपिन पेडके नीचे आया तो वहाँ कोई न था। इतनेमें सत्य भी आ पहुँचा। उसने इधर-उधर देखा। विपिन अपने खजानेको उस दूब-कालीनपर फैलाकर उसकी देख-भालमें लग गया था।

सत्यको सहसा दीखा, पास ही गरिमा उस पेडकी तरफ पीठ किये अकेली एक कुजके पत्रोंसे उलझ रही है। बोला—विपिन, देखो, यह रही तुम्हारी जीजी !

विपिन तो परमात्माकी लूटकर लाई हुई अपनी इस निधिको ...नेमें मग्न था और अचरज मना रहा था। आवाज सुनते ही चौंक-कर, फिर अपना प्रशस्त खजाना बटोर-बटार, जीजीके नामपर खुशीकी चीख देकर विपिन उसी ओरको भाग छूटा। सत्य भी चला।

वह मुडी। विपिन बेतहाशा अपनी जेबोंको सँभालता भागा चला आ रहा है। पीछे सत्य है। क्या करे ?

विपिन पहुँचा—

"यह क्या कूडा भर लाया रे ?" कहकर जेबोंकी तलाशी लेनी आरम्भ कर दी। चलो, यह अच्छा काम मिल गया।

"जीजी, यह देखो, ऐसा फूल तुमने देखा है?—और इस पत्थरमें कितने रंग हैं—एक दो तीन, नीला भी, लाल भी, सफेद भी ...!"

"देखा तुमने इसका म्यूजियम?" कहते हुए सत्य आ पहुँचा।

"देखो न कैसा पागल लड़का है!"

कहा तो, पर आगे क्या कहेगी सो सोचनेमें लग गई। खजानेकी जाँच-पड़ताल बन्द हो गई।

अगर कोई उसके जमा किये खजानेकी खूबी नहीं देखना चाहता, न सही। वह खुद क्यों न देख-देखकर खुश हो। विपिन वहीं बैठकर अपना अजायबघर सजाने और फैलाने लगा।

धानी साड़ीके ऊपर और कुछ नहीं है। वह साड़ी हवामें कभी कभी स्वच्छन्दतासे लहरें लेनेका प्रयत्न कर रही है, और उसे दाब रखना पड़ता है। पैरोंमें जूता नहीं है, और बारीक बारीक उँगलियाँ साड़ीसे बाहर निकली हैं।

सत्यने अभी इतना ही देखा। अब ऊपर मुँह उठाया। गरिमाका चेहरा अब उस तरह न रह सका,—वह झुक गया। सिरपरका साड़ीका किनारा अस्त व्यस्त हो पड़ा है, वेणीमें लटें कुछ इधर-उधर बिखर गई हैं। जहाँ-तहाँ एकाध सूखा पत्ता बालोंके घोंसलेमें उलझ गया है।

शहरी, सभ्य, पढ़ी-लिखी लड़कीका यह वन्य रूप बड़ा मनोमुग्धकर जान पड़ा।

"गरिमा!"

वह चौंकी।

"खड़ी क्यों हो? बैठ न जाओ।"

सत्य खुद बैठ गया तो वह भी बैठ गई।

"बाबूजी, कहाँ गये?—और बिहारी?" सत्यके स्वरमें थोड़ी थोड़ी आंतरिक मुस्कानकी-सी ध्वनि थी।

गरिमाने समझा, यह व्यंग है। उसके अकेलेपनपर व्यंग है। उठकर वह चलनेको हुई।

"क्यों...?"

"बाबूजी यहीं कहीं होंगे। देखूँ।"

"नहीं, बैठो। बाबूजी इस अकेलेपनपर नाराज नहीं होंगे।"

गरिमा लजा गई। सत्यने भी देखा, यह कैसी बात निकल गई!

"आओ, गरिमा, ये छोड़ो। ऐसे बातें कैसे होंगी। और हमें कुछ बातें कर लेनेकी जरूरत है। नहीं तो कहीं हम एक दूसरेको ग़लत समझने लगें।"

गरिमा चुप बैठी है।

"गरिमा, मैं वकालत नहीं कर रहा हूँ। तुमसे यह कह देना जरूरी है। मेरा वकालत करनेका इरादा नहीं है। क्या करूँगा, सो नहीं कह सकता। पर कभी बहुत सा धन या मान कमा सकूँगा, ऐसी आशा नहीं है। यह हम सब लोगोंको समझ लेना चाहिए।"

"तो मैं इस बातसे क्या करूँगी?"

"तुम्हारा तो उससे खास सम्बन्ध है।"

अबके फिर उसकी जुबानपर 'पिताजी' आ रहा है।

"पिताजीकी क्या मंशा है, तुम जानती हो। पर मैं तो अपनेको बहुत ही अयोग्य पाता हूँ।"

"आप जो कहें, कह सकते हैं। पर मैं ऐसी बात नहीं सुनना चाहती।"

"नहीं, सुनना चाहिए, समझना चाहिए। तुम न करोगी, कौन

करेगा ? और मेरा साफ साफ कह देना कर्तव्य है। मैं अमीर नहीं हूँ, न हूँगा। पहली बात, मेरे-तुम्हारे जीवन-क्रममें बहुत अंतर मालूम होता है। फिर एक और बात है ..।"

गरिमा, जो कहो, सुननेकी प्रतीक्षामें है।

"...वह बात यह है कि पिताजीको मैं अभी कुछ जवाब नहीं दे सकता। अभी कुछ भी न समझना ठीक है।"

इसपर तो वह चमक उठी—

"आपको यह मेरा अपमान करनेकी कैसे हिम्मत होती है?"

यह क्या बात! सत्य एकाएक समझा नहीं, चुप रहा।

"मैंने आपको क्या समझा है! और आप क्यों यह सब बातें मुझसे कहने बैठे? मैं कहे रखती हूँ, मेरे अपमानकी आपकी मंशा हो भी, तो भी अधिकार बिल्कुल नहीं है।"

सत्यने इस दृष्टिसे कभी इसपर विचार किया ही नहीं। पर गरिमाकी भावनाओंको समझकर उसने देखा, सचमुच उससे बड़े अनौचित्यका कार्य हो गया। वह अब उसके प्रतीकारको उद्यत हुआ—

"मैं ..मैं ..."

किन्तु बीचमेंहीमें सुनना पड़ा—

"देखिए, आप यह न समझिए, आपका मुझपर बिल्कुल अधिकार है। इसने आप धोखेमें पड़ सकते हैं।"

सत्य विरोधमें गुनगुनाया। पर क्या कहे!—कि यकायक—

"अच्छा, अब आप क्या अपनी कट्टोकी कुछ बात कह सकते हैं?"

क्टो! यह उसे क्या जाने! जरूर बिहारीकी शरारत है। बोले—

"आप कट्टोको कैसे जानती हैं?"

"'आप' न कहिए। 'तुम' ही ठीक है। आखिर इतनी सभ्यताकी

जरूरत ! आप तो सभ्यताकी जरूरतसे अपनेको ऊँचा पहुँचा मानते हैं।....हाँ, कट्टोकी बात कहिए। मैं कैसे जानी उसे, आपको इससे क्या ?"

उसने देखा, कैसे एक शहरी लड़की उसे निरुत्तर कर सकती है। जब वे दोनों अकेले हैं, संसारका कोई नियम जब उनमें अन्तर डालनेको उपस्थित नहीं है, तब कई बातोंमें यह लड़की ही उससे ऊपर है। यह सत्यने देखा और उसपर विजय पानेकी इच्छा हो आई।

"वह गँवई लड़की है, बड़ी पगली है, उसका क्या सुनोगी ?"

"बड़ी पगली है!—सुनूँ तो उसका जरा पागलपन ?"

"ऊँह! छोड़िए।"

"वह तकिया भी तो उसका पागलपन है न ?"

वह चौंका। देखा, बात बढ़ रही है।—तो यह बात है! मेरा तो अधिकार कुछ है नहीं, अपने अधिकारकी सतर्कतासे रक्षा भी करनी आरम्भ कर दी! पर अब वह बातमें कहाँतक झुकता जाय ? बोला—

"हाँ, है तो।"

"है तो !—बड़े ठंडे दिलसे कहते हैं यह आप!"

"नहीं तो क्या....।"

"अच्छा, जाने दो।" गरिमाने कहा और तभी एक, ताजे उठे हुए भावसे उसका चेहरा चमक गया। पूछा, "अच्छा, मैं वैसी ही बन जाऊँ तो कैसा !—तुम्हे अच्छा लगेगा ?"

"तुम बन नहीं सकतीं।"

"बन सकती हूँ, यही तो तुम जानते नहीं।"

'आप' से 'तुम' पर वह कब उतर आई थी सो उसे पता नहीं चला।

"कैसे ?"

"ऐसे—"

कहकर वह झटसे भाग छूटी और पासके एक दरख्त चढ़ गई, जैसे बन्दरकी आत्मा उसमें आ गई हो। सत्य भी उस दरख्तके नीचे पहुँच गया। पहुँचना था कि उसके सिरपर सूखे पत्तों और छोटी छोटी कनियोंकी बारिश हो पड़ी।

"अब कैसा—?" सत्यसे पूछा गया।

"अब मैं पछताऊँगा।" सत्यने कहा।

"पछताना नहीं। कट्टोको दुनियामें सब कुछ न मानने लगना। नकियेकी बात है तो आज एक मुझसे ले लेना। तैयार रक्खा है।"

सत्यको लगा जैसे अब वह यही करेगा। कट्टोको भूल जायगा।

गरिमा उतरी। झटपट विपिनको साथ लिया। हँसती-खुशती एक हाथसे सत्य और दूसरेसे विपिनको पकड़कर मानो उड़ाए ले चली। पर बागके दर्वाजेपर पहुँचकर एक अँगुली मुँहपर रखकर बोली—"बस, अब चुप!"

फिर वह भारी-भरकम गरिमा अपने बजरेमें पहुँची। बाबूजी और सितारी वहीं थे।

काश्मीरसे लौटकर बिहारीका विवाह सम्पन्न करनेकी इच्छासे सत्य सीधा अपने गाँव पहुँचा।

११

अभी देर नहीं हुई कि कट्टो भागी भागी आई। धोती मैली है, बाल बिखरे हैं, पसीना आ रहा है, हाँफ रही है। हाथ आटेमें सने हैं।

"आ गये?"

"हाँ, आ गया।"

"बड़ी जल्दी आ गये। छुट्टी हो गई?"

"बस, अब छुट्टी ही है।"

"अच्छा तो मैं अभी आऊँगी, रोटी बनाकर। अम्माँका जी अच्छा नहीं है। सो मैं ही कई रोजसे रोटी बनाती हूँ। सुना, तो ऐसी ही भाग आई। . बिगड़ो मत, अबकी ठीक होके आऊँगी।"

कहकर रुकी नहीं, भाग गई। मास्टरजी सोचमें पड़ गये। मनमें ही बोले, "कट्टो, ऐसी तू कबतक रहेगी? नादान लड़की, क्या तू नहीं जानती तेरे आगे क्या है? नहीं जानती तब तक ही अच्छा है, नहीं तो रोनेके सिवाय तुझे कुछ काम नहीं रहेगा।"

पर मास्टरजीने बीड़ा उठाया है तो करके ही छोड़ेंगे। लेकिन बिहारीकी चर्चा कैसे चलायें!—यह सोचकर उन्हें लाज आती थी। बात कैसे बढ़ती होगी?

थोड़ी ही देरमें कट्टो फिर आ पहुँची। क्या निबट आई? नहीं तो! हैं तो वैसे ही हैं, वही हाल है।

"चलो, आज हमारे यहाँ खाने चलो। माँजीसे कह आई हूँ।" कैसी लड़की है! माँसे भी पूछ आई! न वक्त देखा न अपना हाल! जो सूझा, कर डाला,—न सोच, न विचार, न आगा, न पीछा!

मास्टरजीने कहा—चलो।

मास्टरजीने सोचा है अपनी बातके लिए उससे अनुकूल कोई अवसर न होगा जब यह परोस रही होगी।

खानेको बैठे। बहुतोंका आतिथ्य भुगता है, पर यहाँ तो आतिथ्यका नाम ही नहीं। ऐसा निमन्त्रण उन्होंने पहला ही देखा। अम्माँ तो पड़ी

है, कुछ मदद कर नहीं सकती। कट्टो सीधी चूल्हेके पास जा पहुँची। तवा थाम दिया था। चूल्हा सुलगाकर उसपर तवा रखते हुए कहा—

"बैठो न, थाली ले लो।"

मास्टर साहबको अपने आप, जहाँ दीखे वहाँसे, थाली ले लेनी पड़ी और अपनी समझके मुताबिक़ जगहपर जा बैठना पड़ा।

"देखो, वह पटड़ा है और वहाँ पानी रक्खा है।"

यह कसरत भी भुगती, पर यह सब बड़ा अच्छा लगा। ऐसा बेतकल्लुफीका बर्ताव इच्छा रहते भी, कभी न कर पाये थे।

"देखो मेरी रोटी जल जायगी, नहीं तो मैं ही दे देती।"

"और मैंने जो ले लिया।"

"नहीं तो।... जरा थाली आगेको लाना...और...अरे, नहीं नहीं, चौकेसे दूर।"

"यह बड़ी पाबन्दी है कट्टो।"

"अम्मोंका चौका है, मेरा नहीं। मैं तो करती नहीं, पर जिसे वह चाहे वह तो कर देना अच्छा ही है।"

"मैं काम चाहता हूँ बुरा है।"

"हाँ, कभी मत कहना बुरा है।"

इस लड़कीकी बात तो देखो! मास्टरसे गुरुआनी सी बात करती है पर मास्टरजीको यह शिक्षा बड़ी मीठी लगी।

आलूका साग और पराँवठे दे दिये गये। उनके साथ नमक तो दिया, अचार भी, पर क्षमा-याचनाका एक भी शब्द नहीं,—जैसे छत्तीस व्यंजन परोसकर सेठ लोग हाथ जोड़कर पेश कर दिया करते हैं।

"वक्त तो था नहीं और कुछ बनाती, और तुम्हें रोटी खिलानी थी ज़रूर।...साग और दूँ!...भूखे रहे तो मेरी कसम।"

मास्टरजीने बड़े चावसे खाया। जो कहे, उन्हें स्वाद नहीं आया, वह महा झूठा।

मास्टरजी अपनी बात शुरू करनेकी फ़िक्रमें थे।

"कट्टो, हमारी भी बात सुनो।"

"सुनती हूँ.. यह पराँवठा लो,...क्या कहते हो?"

"यह पेटपर ज़ुल्म ठीक नहीं।...हाँ, मेरा एक दोस्त है। "

"देखो, मैं सुनती हूँ—पराँवठा जल जायगा तो!"

"अभी जो गया था मैं, तो वह मेरे साथ था।"

"कौन?"

"वही मेरा दोस्त।"

"कौन दोस्त?... कहाँ . ठहरो, मेरा प . . . ।"

"तुम सुनती तो हो नहीं......।"

"सुनती हूँ। निबटनेके बाद मन लगाकर सुनूँगी। अभी तो ...।"

पहले प्रयत्नमें इस अजीब ढंगसे निष्फल होना शुभ-लक्षण न जान। अगर कृतकार्य न हुए तो....?

निबट-निबटाकर वह आई। नई धोती पहने है, बाल सँवारे हुए हैं, सकुची सकुची आ बैठी है। अबके अपने साथ थोड़ी-सी लाज लेती आई है।

मास्टरजीने भी देखा, यह भी मौका बेढंगा हो गया है। ऐसे भारी भारी वातावरणमें बातका रुख बिगड़ न जाय! तो भी प्रयत्न तो करेंगे ही।

"ऊपर सो रहा है।"

सामान रख-रखाकर कहा—माँजी, मैं ऊपर जाऊँ?

"हाँ हाँ। वह जीना है।"

बिहारीको जल्दी है। बातोंके कारण सत्यसे मिलनेकी जल्दी है। झट ऊपर पहुँच गया।

सत्य सो रहा है। जगाये या न जगाये? पाँच-सात मिनट बैठनेके बाद बिना जगाये उससे रहा न गया।

"मास्टर साहब!"

"मास्टर साहबको झकझोर उठाना पड़ा। उठे।

"बिहारी!—बिहारी तुम!"

बिहारीने कहा—"हाँ हाँ, अभी टपक पड़ रहा हूँ। घबड़ाओ नहीं, सपना नहीं हूँ, सदेह बिहारी हूँ। यह प्रमाण लो।" कहकर, एक बार कंधा पकड़कर फिर झकझोर दिया।

मास्टर साहब अपने-पनमें आये।

"आओ, बैठो।"

"आया भी हूँ, और बैठा भी हूँ। अब आदमी बन चलो, सुना? यों सोते-से मत बने रहो।"

दोनों फिर दो कुर्सियोंपर बैठ गये। बात शुरू होनेकी देर थी, बिहारी बोला—हाँ कहो...।

मास्टर साहबने मिचमिचाकर कहा—कहो।

और उनकी दृष्टि उस दूर क्षितिजके ऊपर उड़ती हुई चीलपर जा पड़ी।

१९

जिस बातको कहना है उसको कब तक गलेमें अटकाये रक्खा

जाय ? लेकिन कहनेमें बड़ी कठिनता होती है। जैसे आत्मग्लानिका घूँट जो उबककर मुँहमें आता है, उसे फिर गलेके नीचे उतार लेना पड़ता हो ! सत्य दोनोंके ही अपराधी हैं,—कट्टोके भी और बिहारीके भी। दोनोंको बढाया, और अब दोनोंको खोकर आप बच निकले जा रहे हैं। तो भी सारी कहानी सच सच कह दी।

पर बिहारी मर्द है,—सच्चा बिहारी है। इतनी मेहनतसे अभी अभी जिस भविष्यके स्वर्गको खड़ा किया था, और जिसे अभी सजा ही रहा था, उसको सत्यने नष्ट-भ्रष्ट कर डाला है। और सत्य ही वह व्यक्ति है जिसने उसे उस भविष्यकी दागवेल डालनेको निमन्त्रित किया था। लेकिन अभी तो उस भविष्यके चकनाचूर ढेरके पास खडा होकर वह सिर सीधा रखकर मुस्करा ही देगा, पीछे फिर चाहे कितना ही रोये। वह अभी तक अपनेसे अलग खडो हुई निराशाके अँधेरेका छेदन कर यह भी देखता है कि सच पूछो तो इस जगतमे कहीं किसीपर भी दोष रखनेमें अर्थ नहीं है। लेकिन सत्य एक बात कहकर उससे डिग रहा है, यह उसकी समझमे नही आता। उसने कहा—

"चलो, मेरा झगडा छोड़ो। लेकिन अब तुम क्या करोगे ?"

"माँको मार नहीं सकूँगा।"

बिहारी जानता है कि उसकी बहिनका मामला है। पर बिहारी असमंजसको बहुत जल्दी काट फेंकता है। उसने अपने जीवनका आदर्श कुछ बहुत ही स्पष्ट और निर्णीत धारणाओंपर गढ रक्खा है। उसमें ज्यादे हेर-फेर और घुमाव-फिराव नहीं है। इसीलिए ऐसे मौकोंपर वह सकटमें नहीं पडता। इसीलिए वह सदा हलका हलका बना रह सकता है,—क्योंकि वास्तवमें वह खूब भारी है। उसके व्यक्तित्वका लगर खूब गहराईमे बड़ी मजबूतीके साथ, एक निष्ठामे गड़ा हुआ है। इसलिए वह चाहे दुनियाके पानीपर कितना ही लहराता क्यों न रहे,

Rock की तरह, डिग नहीं सकता। एक ओर गरिमा और दूसरी ओर गड्ढा,—इन दोनोंके बीच अपनी राह बूझते हुए सत्यको इसीलिए विहारी ठीक निर्णय दे सकता है। विहारीने कहा—

“ कुछ भी कहो। मैं होता तो मैं अपनेको छल न सकता।”

“ यह बात नहीं है, विहारी। लेकिन ..कुछ और ही बात।”

“ मुझसे पूछते हो तुम? मैं तो यह कहूँगा कि तुम आत्म-प्रवचन करते हो, और उसके साथ चलनेवाली जो आत्म-ग्लानि है, उसे अपनी मां और बापकी और गरिमाकी ओट बैठकर बचा जाना चाहते हो। ऐसा नहीं होगा, सत्य।”

“ तुम अन्याय करते हो विहारी।”

“ ऐसा समझो, ऐसा ही सही। लेकिन, सत्य, तुम थोड़ा अन्याय नहीं कर रहे हो।”

“ मैं बंधा हुआ हूँ।”

“ वचनसे नहीं?”

“ उससे भी ज्यादेसे,—कर्तव्यसे।”

“ कर्तव्यसे?—ओहो! फिर तो आगे जुबान बंद। इस शब्दके आगे तो मैं घुटने टेककर बैठ जाता हूँ। जी तो कुछ और होता है, पर इस शब्दकी अद्भुत पवित्रताको यादकर हाथ ही जोड़ देने पड़ते हैं। अभी चाची माँईके पड़ोससे कुछ कहें तो इसी थैलीका एक शब्द सुन लें—धर्म! जहाँ धर्म और कर्तव्य बहुत सुन पड़ते हैं, वहाँ मुझे जानकर हाथ रखनेके अतिरिक्त कुछ काम नहीं रहता। सुना सत्य?”

विहारीकी यह बकतृता सत्य पचा नहीं सका। अब तक वह अपनेको ज्ञानी मानता था। लेकिन जब देखा कि विहारी बिना प्रयास यह अंतर पाट सकता है तो यह अनुभव सत्यको रुचिकर न हुआ। कहा—

"बिहारी, यह लेक्चर देना कबसे सीख गये ?"

"नहीं नहीं, माफ करो।... तो फिर क्या तुम निश्चयपर आ गये हो ?" अभी निश्चयसे जरा दूर थे, पर बिहारीके शब्दोंने मानों धक्का देकर उन्हे वहाँ पहुँचा दिया।

"हाँ, अपनी माँसे आज ही कह देना होगा। तुमको तो इससे प्रसन्न होना चाहिए।"

"हाँ, हाँ, क्यों नहीं। मैं आया ही इसलिए हूँ। लेकिन एक बात बताओ,—कट्टोसे तुमने कह दिया है न ?"

"न...."

"न—कहा नहीं ? बड़े सुस्त हो। जरा शका थी, तभी यह बात उसे कह देनी थी। लेकिन अब न कहना, यह काम अब मुझे करना होगा। पर एक काम करोगे ?"

"बोलो ..."

"एक बार कट्टोको बुलाना होगा, मेरा परिचय कराना होगा।"

२०

दोनों मित्र बैठे हैं, अपने अपने ध्यानमें हैं,—और प्रतीक्षामें हैं। वो अब आना चाहती है। कट्टो आना चाहती है,—कहीं खटका न हो। समय मानो रुक गया है, हवा ठहर गई है। मित्रोंकी निकलती हुई साँस ही मानों वहाँ कमरेमें सचल वस्तु है।

कट्टो आई। छायाकी तरह, चलती हुई मूर्तिकी तरह।

हैं, य, कौन ! एकदम बहुत लम्बा घूँघट निकल आया और वह दर्वाजेके पास ही, इधर पीठ करके, दोहरी होती हुई खड़ी हो गई।

बिहारीके मनमें हुआ सत्यको शाप दे डाले।

सत्यके जीको जैसे कोई ऐंठकर निचोड़ने लगा।

कुछ सन्नाटा रहा। किसीको बोल नहीं आया। तीनोंके मनसे न जाने क्या बात निकलकर अलक्षित और अव्याहत रूपमें उस कमरेकी शून्यतामें व्याप्त हो गया। एक भारी त्रास सारे कमरेमें इन तीनोंहीके जीको घोटने लगा।

अब बिहारी जायगा। सत्यकी जीभ मानों जकड़ गई है,—वह मानों रो देगा, बोल नहीं सकेगा। ऐसे संकटमें बिहारी ही त्राण देगा। उसने कहा—

"भाभी! ."

सत्य काँप उठा। कहीं वह अभी दयाकी भीख न माँग उठे!

कहो, अगर हिल सके तो किवाड़के पीछेवाली परछाहींमें समा जाय। 'भाभी!' इस शब्दके अर्थने मानों बिजलीकी तरह उसके शरीरमें बींध कर उसे सुन्न कर डाला।

"भाभी!—यह नहीं होगा। मैं पर्दा नहीं करने दूँगा।" यह कहा और पास पहुँचकर दोनों हाथोंसे दो छोरोंको पकड़कर बिहारीने घूँघट उलट दिया।

ओ, बिहारी, यह न करो, लाज करो, तरस खाओ। देखो, वह काँप रही है, मुड़ती जा रही है, सिकुड़ सी पड़ी जा रही है!—कहीं और कुछ न हो जाय!

बिहारीने देखा,—माथेपर नन्हीं सी टिकुली है, बाल चिपटाकर सँवारे हुए हैं, हाथोंकी दो लाल चूड़ियाँ उझक कर अपनेको दिखला देना चाहती हैं।

उसके जीमें उठा कि हाय, सत्य, तू पशु है!

इसका सिंदूरिया रंग ठहरेगा? यह टिकुली क्या फिर लगेगी? क्या यह गाँवकी लड़की दूसरी बार अपनेको ऐसा सँवारनेका अवसर पावेगी?

हाय, अगर बिहारी ? लेकिन...

"भाभी ! ऐसे नहीं खड़ी रह सकोगी । . तुम्हारा नटखट बिहारी आया है । वह तुमको अपना परिचय देना चाहता है । चलो उसकी सुनो ।"

कलाई पकड़कर उस मुस्कांती हुई बालाको निर्दयी बिहारी खचेड़ ले चला । ले जाकर कुर्सीपर प्रस्थापित कर दिया ।

अब खून उसमें दौड़ रहा है । गड तो कही पाई नहीं,–और अब अवसर निकल गया । अब हठात् वही दरख्तवाली कट्टो बने बिना उससे नही रहा जायगा । वैसे यह अपनेको बिहारी कहनेवाला निर्दयी भी उसे क्या यों ही छोड़ देगा ?

अब कट्टोकी गर्दन उठी । आँखें उठी, फली, कोयोमें जरा स्निग्धता आई । वही आँखें जिनमे छुना हुआ सीत्व भरा है ।

"देखो, अब मै पराया नही हूँ । बताऊ, मै कौन हूँ, क्यों आया हू ?" बिहारी उन आँखोंमे प्रोत्साहन पाकर बोलता ही रहा, "बताऊ—इन तुम्हारे मास्टरजीपर कुछ रोजसे एक भूत आने लगा है । ."

ओठ फैले, जहाँ अभी गुलाबी-सी चमक थी गालोंमे, वहाँ अब एक छोटा-सा गड्ढा पड गया । वह मुस्कराई ।

"उस भूतका नाम है गुम-सुम । जिसपर चढता है उसे गुम-सुम कर देता है । मै भूत उतारनेमें खूब होशियार हूँ । बरसों मैं इनके साथ पढा हूँ,—यह मेरी तारीफ जानते हैं । इस भूतकी बात जानकर फौरन दौड़ आया हूँ । देखो भी भाभी, अब करता हूँ चेष्टा इनके भूत उतारनेकी ।"

कट्टो हँसी—

"चुप क्यों बैठे हो जी !—नहीं तो यह शुरू करें उतारना तुम्हारा भूत !"

उनकी तो जीभ जैसे और भी ऐंठी जा रही है। बोलना चाहते हैं, पर जैसे वह जवाब दे रही है।

"ऐसे नहीं, देखो, एक काम करो। तुम उधर जाओ, मैं इधर खड़ा होता हूँ। एक-दो-तीन कहूँगा, तीनपर एक साथ मैं भी और तुम भी, इनकी बगलके ठीक बीचोंबीच बिन्दुपर गुदगुदी मचा दें। ठीक बीचों-बीच बिन्दुपर, इधर उधर नहीं, और ठीक तीनपर, आगे-पीछे नहीं!—तो गुस्सा-गुस्सा और चढ जायगा। समझती तो हो न? ..ठीक...."

"हाँ हाँ. बिल्कुल ठीक लो, बिल्कुल .."

"तो बोलता हूँ। ए . क, दो . ओ. ..ओ...देखो, ...ठीक... हाँ .बोलता हूँ आगे! "

"यह क्या तुम लोग तमाशा बना रहे हो?' सत्य झल्लाया।

बिहारी बोला—देखा, भागा वह भूत, भागा!

"चुप रहो जी, शरारत बन्द करो।"

पाटोंकी हँसीकी फुहार उछली पड़ रही है।

बिहारीने कहा, "देखो, मैंने कहा था न? पर यहाँ तो दवाके सामने ही काम चल गया।"—

बिहारीपर डाँट पड़ी—बिहारी!...

कहोने कहा—अब तो भाग गया भूत। अब तो बोलो।

सत्य इधर मुड़ा, बोला—कट्टो! ..

ओहो! दूसरेके सामने यह!

बोली, "किसे कहते हो काट्टो? कौन है कट्टो? तुम्हें शऊर नहीं है—कि कौन है, क्या है ..! काट्टो कट्टो!"

कट्टोकी इस भड़कनपर बिहारीको हुआ कि यहाँसे छिपकर वह कहीं न कहीं जाकर और ले लेता!

अपने साथ बहुत ज़ोर लगाकर, "अच्छा, बिगड़ो मत। और कोई नाम भी तो नहीं मिलता—क्या कहूँ!" सत्य आखिर बोला—

"कुछ भी कहो—हम नहीं जानते।"

"अच्छा ..यह मेरे साथी हैं। मैंने एक रोज तुमसे जिक्र किया था, यह वही है।"

बात खतम नहीं हो पाई थी कि कट्टोने बिगड़कर बिहारीसे कहा—

"तुम ...."

तभी कुछ हो गया कि उसने फिर घुँघट आगे बढ़ा लिया—पहले जितना नहीं, ज़रा थोड़ा।

"भाभी, मैं तुम्हे अब शर्माने न दूँगा।" कहकर उसने घूँघटको वैसे ही उठा दिया।

लेकिन अब कट्टो अदब नहीं भूल सकती।

बिहारीने कहा, "एक मिनटमें बड़ी-बूढ़ी हो आना चाहती हो तो तुम्हारी मर्जी। लेकिन एक बात कहो। मैं तुम्हारे घरपर आऊँ तो भोजन दोगी न?"

कट्टोने अपने मास्टर-साहबकी ओर देखा, इस भावसे कि—आज्ञा? फिर कहा—

"हाँ, कल सवेरेका निमन्त्रण है। याद रखना, भूलना नहीं। इन्हें भी साथ ले आना।"

२१

इसी डाकसे बाबूजीको दो पत्र गये हैं। बिहारीने लिख दिया है,—सब ठीक है, मुहूर्त निकलवा लें। सत्यको राजी समझिए। सत्यकी माँ जल्दी ही चाहती हैं।

इधर बिहारीकी शोखी देखकर सत्य फिर पल्टा खा गया है। साथ ही समझता है,— आनाकानी करते रहनेमें भी कुछ बात है। उसने बाबूजीको यह पत्र लिखा है—

" बाबूजी, बिहारी आ गया है, प्रसन्न है। उसे लौटनेमें विलम्ब हो तो आप चिन्ता न करें। मैं उसे जल्दी नहीं लौटने दूँगा। कब तो आया है।"

" मैंने आपको एक लड़कीकी बात कही थी। आप भूले न होंगे पिछले दिनोंमें कुछ ऐसी परिस्थितियाँ उठ आईं कि मुझे उसकी विशेष चिन्ता करनी पड़ी। वह बातें मैं आपको लिख नहीं सका, अब भी खुलकर लिख नहीं सकता। शायद बिहारीने आपको कुछ लिखा होगा। बिहारीको मैं अपना पूरा दिल कैसे दे सकता हूँ? मालूम नहीं, बिहारीने क्या लिखा है। लेकिन मैं तो अभी पूरी तौरसे हाँ कर नहीं सकता। इस लड़कीसे कुछ बातोंमें मैं बँध बैठा हूँ। वह मुझे न जाने किस ढगसे देखने लगी है। वह समझती है, मैं उसको अपनाऊँगा। या तो इस समझको मुझे अपनी ओरसे तोड़ना होगा, या नहीं तो किसी तरहसे उसके दिलमेंसे यह भाव निकाल देना होगा। पहली बात मुझसे न होगी, दूसरी बात मालूम नहीं कैसी होगी। लेकिन जबतक यह न होगी तब तक मैं अपने हाथोंमें नहीं हूँ, और आप कुछ निश्चित न समझें।

माताजीको नमस्ते दे दें और बिपिनको प्यार।—आपका सत्य।"

जैसे मन उसका अस्थिर है वैसे ही उसकी बात भी डिगमिगाती होती है। दो-टूक कहना नहीं जानता। इस चिट्ठीके बाद भी उसका मन डाँवाडोल है। सोचता है, बाबूजी क्या जवाब देते हैं। जैसे अपना निर्णय वह आप नहीं करना चाहता,—चाहता है दूसरे उसके

लिए निर्णय करके दे दें। मन-भाया निर्णय दूसरेसे पाकर वह झट उसे मान लेगा। हमें बिहारीकी बात ही ठीक जँचती है। वह दूसरोंकी ओट चाहता है, जिससे कामका सारा उत्तरदायित्व वह उनपर फेंक दे सके, और खुद अपने सामने अपराधी बनकर खड़े होनेसे बच जाय।

बिहारी नहरसे नहाकर आया है। अब वह कट्टोके निमन्त्रणपर जायगा। सत्य मन ही मन सोच रहा है—अगर बाबूजीने लिख दिया कि 'जो चाहे करो, मेरी और गरिमाकी चिन्ता न करो, गरिमाका इसी सालमें कहीं और ब्याह कर दूँगा'—तो? तब तो मै कहींका नहीं रह जाऊँगा। यह ठीक नही होगा। लेकिन देखे तो बाबूजी क्या लिखते हैं।

सत्यको अब जमीनपर और हिसाब किताबके साथ चलनेकी अकल सूझी है। अब वह चारों ओर ठोक-बजाकर, जाँच पड़तालके बाद, नफे-नुकसानकी सारी बातोंका लेखा लगा चुकनेपर, आगे बढ़ना चाहता है। अब उसे हठात् यह सूझ रहा है कि इधर क्या लाभ हानि है और उधर कितनी है, यह सब देख-भाल लेनेकी जरूरत है। इस आमद-खर्चकी हिसाबी सूक्ष्म-बुद्धिपर चढ़कर जब वह तोलने बैठता है तो देखता है, कट्टोकी ओर आमद नहीं, खर्च ही खर्च है। दूसरी ओर आमदनीकी कई मदें हैं, खर्च लगभग है ही नहीं। प्रतिष्ठा बढ़ेगी, पैसा आयगा, सुख भी मिलेगा, और भी बहुत कुछ। दूसरी तरफ सब कुछ खर्च होगा,—मिलेगा क्या? यह नहीं कि सत्य खर्चसे चूकता है पर अब वह खर्च लेखा देखकर करना चाहता है। आमदनी दे ले, तब दान देगा। बिना पड़ता बैठाये उत्सर्ग करनेमें वह देखता है कुछ हाथ नहीं आता।

ऊहापोहमें बहुत काल पड़े रहनेपर एक दिन जब यह मानकी

बुद्धि सत्यमें पैठी, तब देखा, वह अब तक कैसे बे-लाभ आदर्श कल्पनाके वीरान मैदानमें फिरता रहा है। यह भी देखा, बाबूजीको वह चिट्ठी लिख चुका है, और सम्भव है, तीर वापिस न आये। तो भी अभी आशा है, काम बिलकुल नहीं बिगड़ा, देखे तो बाबूजी क्या लिखते हैं।

इस कुर्सीपर बैठा बैठा सत्य कहाँका बहका कहाँ पहुँच गया है, नहरमें नहाया आता हुआ बिहारी इसकी बिल्कुल कल्पना न कर सकता था। वह अब कट्टोके यहाँ जा रहा है। उसने पूछा, "सत्य, चलोगे? वह खास तौरसे तुम्हें लानेको कह गई है।"

"मैं नहीं जाता, तुम्हीं जाओ।"

"वह बिगड़ेगी मुझपर।"

"कह देना, सिरमें दर्द है।"

"तब तो वह मुझे गलीपर बैठा छोड़कर तुम्हारा सिर सँभालने दौड़ी आयेगी।"

"कुछ कह देना, लेकिन मैं जा नहीं सकता।"

"क्या बात ..?"

"बात नहीं। लेकिन....यूँ ही।"

"अच्छी बात है।....सत्य, मैं सोच ही रहा था, तुमसे कहूँ कि तुम न जाओ, मुझे अकेला ही जाने दो।"

"सो ही तो...."

सत्य कुछ पलट चुका है, फिर भी कोई कट्टोकी ओर खिंचे, यह उसे नहीं चाहिए। इसीलिए इस बेटने संक्षिप्त 'सो ही तो' के अलावा और कुछ न कह सका।

बिहारीने धोती पहनी, बाल काढ़े, नई कमीज पहनी, धोती भी

दूसरी बारीक निकाल ली—यह सब सत्य देखता रहा। आज पहली बार सत्यको पता चला कि बिहारीके सभी कपड़े मुझसे अच्छे हैं, और बिहारी शकल सूरतमें अच्छा लगता है। बिहारीने पैरोंमें स्लीपर डालकर कहा—

"चलता हूँ। तुम्हारे लिए माफी माँग लूँगा। लेकिन मैं भाभीके विनाशके लिए जा रहा हूँ। आज भाभी अन्तर्द्धान कर जायँगी, कट्टोका पुनरुद्धार होगा।—भाभी, यह बिहारी आता है आज तुम्हारा संहार करने, यह तुम्हें जगत्में लोप विलोप-सलोप कर जायगा, और तुम्हारी जगह छोड़ जायगा एक आलुलायित लोल-लोचना, कटाक्ष-संयुता शुभ्राम्बर-परिवेष्टिता, विधवाविशेषणयुक्ता, जगदम्बास्वरूपा, मुक्तकेशी, सुहासिनी गवांरिणी।" यह कहकर दोनों पैर जोड़ 'अटेन्शन' खड़ा हो गया और बोला—

"देखा, सत्य, मैं भी कैसी साहित्यिक भाषा बोलकर अभिनय कर सकता हूँ!" कौन बताये, इस अभिनयके खिलवाड़में और साहित्यिकताके आडम्बरमें बिहारी किस गहरी उमड़नको छिपा [illegible] जानता न था।

जब चलनेको मुड़ा तो आँखोंके कोनोंमें आई दो नन्हीं-सी लालीको उसने झटपट पोंछ डाला। बिहारी, तुम धन्य हो, जो तुम्हें रोना आता है तो हँसकर दुनियाको धोखेमें डालकर चुपके-चुपके आँसू पोंछनेका अवसर निकाल लेते हो! पर बिहारी, यह तुम्हारा विहार दुनियाको भुलावेमें डाल दे, तुम्हें खुदको और इस लेखकको भुलावेमें नहीं डाल सकता। यह देखो, जीनेसे उतरकर जा रहे तुम बहुत से मोती आँखोंसे डाल रहे हो, यह तुम्हारा लेखक तुम्हें देख रहा है और तुम्हें पढ़ रहा है।

जाओ, कट्टोके पास जाओ। वह तुम्हारे बहाने मास्टरका इन्तजार कर रही है।

२२

हँसते हुए बिहारी कट्टोके घरमें घुस गया। सामने ही कट्टोकी अम्माँ खाटपर बैठी है। वह कभी इस घरमें नहीं आया है, और अम्माँ उसे नहीं जानतीं।

सीधा आकर बिहारीने कहा—अम्माँ, मुझे जानती हो?

माँने देखा, एक अच्छे कपड़े पहने खूब अच्छा दिखनेवाला युवा सामने हँसता खड़ा है।

"नहीं तो बेटा।"

"अच्छा बताता हूँ,—पहले पैर छू लेने दो।" कहकर पैर छुए और उसी खाटपर अम्माँके पास बैठ गया।

"अम्माँ, मैं सत्यके यहाँ हूँ। कल आया था,—दिल्लीसे।"

"दिल्लीसे?—"

"हाँ, अम्माँ।"

"दिल्लीमें तो सत्य..."

"हाँ हाँ वहीं है।"

"वहींसे आया हूँ। सत्य तो.."

"अम्माँ, मैं रोटी खाने आया हूँ। कट्टोने कल मुझे न्यौता दे दिया है।"

"तू कट्टोको जान गया?"

"उसके मास्टर-साहबसे जान गया हूँ!"

"सो वह तुझे न्यौता देकर आई थी? तभी तो सवेरेसे लगी है।"

"सो बात नहीं, अम्माँ। लग तो मास्टरजीकी वजहसे रही है। उन्हें भी न्यौता था। पर वह तो आये नहीं,—आ नहीं सके। अब मैं ही दोनोंके बदलेका खाऊँगा।"

"है कट्टो बड़ी अच्छी। उसने मेरे मनकी बात की। पहले तो तेरा हमारे ही यहाँ हक है।"

कट्टोकी अम्माँ, कट्टोकी तारीफ इस बिहारीके सामने न करो। नहीं तो वह शुरू करेगा तो रात-दिन एक कर देगा। तुम नहीं सुन सकोगी, इसीलिए वह चुप है।

"जा भाई, जा। उधर है चौका।...कट्टो, देख तो तेरे मेहमान आये हैं।"

"कौन है?" जानती है, फिर भी पूछनेके लिए कट्टोने पूछा।

चौकेमें कदम रखते हुए बिहारीने कहा—

"दासानुदास बिहारीदास!"

"वह नहीं आये?"

बिहारी शैतान है, उसने पूछा, कौन?

कट्टो झेंपी—चुप।

बिहारीने यहाँ सत्यको गाली दे डालनेकी इच्छा की।

"नहीं . ."

स्वरमें भारी निराशा थी, बोली "क्यों . ?"

"यों ही कुछ काम जरूरी लग गया, आ नहीं सके। कहा है, मेरे लिए माफी माँग लेना।"

"तबीयत तो कुछ खराब नहीं है?"

"बिल्कुल नहीं ,"

आज बहुत-बहुत-सी चीजें बनाई गई हैं। उस दिन कैसा खाना

नहीं है—गिनतीमें सात-आठ चीजें होंगी। आज पहले-ही-से दो पटड़े रक्खे हैं, पानी भरा रक्खा है, सब काम ठीक है। लेकिन आज खानेवाला बिहारी ही है,—और कोई नहीं है। मास्टरको सिर्फ एक ही दफे खिला सकी है जब कि उन्हें अपना पटड़ा खुद बिछाना पड़ा था और अपना पानी आप ओझ लेना पड़ा था। यह कैसा दुर्दैव है!

पर यह बिहारी उसे दुर्दैवकी चिन्तामें पड़े रहनेके लिए खाली नहीं छोड़ेगा। आते ही बात चीतका सिलसिला छेड़ दिया है, और कट्टोके दुर्दैवकी याद भागती जा रही है।

खाते खाते बिहारीने कहा—

"भाभी,—ऊँह भाभी मैं तुम्हें नहीं कहना चाहता। तुम बार बार लजाती जो हो। हमारा तुम्हारा एक और रिश्ता भी है,—बताऊँ?"

कट्टोने देखा यह 'भाभी' कहकर शुरू करनेवाला बिहारी बड़ा दुर्घट जीव है। न जाने अब कैसा मजाक करनेवाला है! वह व्यस्ततासे अपने रोटीके काममें लग गई जैसे बिहारीकी बकवासपर उसे ध्यान देनेकी फुर्सत नहीं है।

"वह फिर बताऊँगा। उसे सुननेके लिए तुम्हें तैयारी करनी पड़ेगी। अब तो 'कट्टो' कहना चाहता हूँ।....ऐं, यों चौंको नहीं। 'कट्टो' कोई बुरी बात नहीं है।"

"तुम नहीं कह सकते कुछ, सुस्को!"

"मेरा रिश्ता सुनोगी, तो समझोगी, कट्टो, मैं कह सकता हूँ।"

कट्टो अब झगड़ पड़नेको तैयार है। यह निर्दय उद्धत व्यक्ति अनधिकारका तूफान उठता है। जैसे कट्टो बिल्कुल ही बच्ची है!

"तुम कुछ नहीं कह सकते—समझे?"

बात कहाँकी कहीं जा पहुँची है। अपनेको बिल्कुल खोलकर रख

देनेसे ही अब वह मोड़ी जा सकती है। नहीं तो समझो, बिहारीका आजन्म निर्वासन हो जायगा। कन्नोकी उपस्थितिमें फिर वह कभी प्रवेश न पा सकेगा। यह सब बिहारी तुरन्त समझ गया। उसने कहा—

"तुम बिहारीको नहीं समझती। अगर उसने तुम्हें जरा भी दुःख पहुँचाया है तो उस जैसा अभागा व्यक्ति दुनियामें कोई नहीं। वह तुमसे क्षमा चाहता है। उसकी बात सुनोगी तो उसपर बिगड़ न सकोगी। और जितनी जल्दी सुन लोगी उतना ही अच्छा होगा। विश्वास रक्खो, तुम्हें तनिक दुख पहुँचानेसे पहले वह—खैर, तुम क्या समझती हो, वह भूत उतारनेके लिए यहाँ आया है?"

"बिहारी बाबू, मैं कुछ नहीं जानती। पर मुझसे मजाक मत करो।"

"नहीं करूँगा। पर रोकर रोनेसे हँसकर रोना अच्छा है। इसीलिए मजाक करता हूँ,—क्योंकि भीतरसे तुम्हें रुलानेकी तैयारी कर रहा हूँ।"

"मुझे तुम्हारी बात समझ नहीं आती। साफ क्यों नहीं कहते हो?"

"खानेसे निवटकर तब कहूँगा, अभी तो एक रोटी दे दो, और वह साग ..वह नहीं....आलूका।"

फिर कोई कुछ नहीं बोला। खाना खाकर उठा तो पूछा, "अपनी बात अब कह सकूँगा?"

"चौकेसे निवट लूँ, तब। जाओ नहीं, अम्माँके पास बैठो।" फिर थोड़ी देर रुककर कहा "बिहारी बाबू, तुम कोई हो, बड़े भले आदमी हो। इस बारेमें मैं अब कभी भूल नहीं करूँगी। कोई अपराध बन गया हो तो भूल जाना। मैं, देखो, गँवारिन हूँ।"

बिहारी ऐसी आत्म-पीडनसे भरी क्षमा-आशाके सामने बिल्कुल न ठहर सका।

"अम्माके पास बैठना है, तभी जाऊँगा।"

चौकेसे बाहर होते ही 'अम्मा अम्मा!' धूम मचाता-हुआ बिहारी चला अम्माँके पास।

"क्या लिया रे?"

"इतनी चीजें बनाईं, अम्माँ, कि खाते खाते सब नहीं खा सका। सबको चखते चखते ही पेट इतना भर गया। अब तो, अम्माँ, लेटे बगैर गुजारा न होगा,—पेट जवाब दे देगा।"

अम्माने अपनी खाट छोड पीढा सँभाला, कहा—

"धूप आ गई है, खाट वहाँ जामनकी छाँहमें कर ले, और नेक सो जा।"

वह लेट गया। पेडपर अधपकी जामनें लग रही हैं। देखते देखते बिहारीके सिरपर टपकसे एक जामन पडी।

"अम्माँ, तुम्हारे घरमें यों आकाशसे बम्बके गोले गिरते रहेंगे, तब तो मैं चौकन्ना ही रहूँगा। घर भी नहीं पहुँच पाऊँगा।"

"अरे, रो मत, सो जा। मर नहीं जानेका, जा, मैं कहती हूँ। जिन्दगीमें भी मिला है कभी तुझे ऐसे सोनेको? वहाँ तो चाहे इसके लिए तरसना ही हो!"

"जाने दो, मेरा क्या, मैं तो सोये जाता हूँ। मेरा सिर फट गया तो इसका तुम्हींको ही देना होगा।"

"हाँ, हाँ, दे देंगे। सो तू अब।"

बिहारी जामनके तले माँके प्यारकी छाँहमें, कहींके इस गँवई स्वर्ग-सुखके लोभमें चैनसे बेफिकर सो गया।

२३

कट्टोके तेलसे गीले हो रहे आले-वाले कमरेमें।

"मैं दिल्लीसे सत्यके लिए विवाह-प्रस्ताव लेकर आया हूँ।"

"तो—?"

"तो तुम्हें इससे कुछ मतलब नहीं?"

"कुछ नहीं।"

"तुमने गरिमाका नाम सुना है?"

"नहीं।"

"मैं उसका भाई हूँ।"

"अच्छा।..."

"अभी जो थोड़े ही दिन हुए सत्य गया था तो हमारे ही साथ गया था।"

"हूँ ..."

"मैं वहाँसे विवाहकी बात पक्की करने आया हूँ।"

"पक्की हो गई?"

"बिल्कुल तो नहीं। लेकिन—"

"झूठ बोलते हो।"

"झूठ क्या?"

"यही कि विवाहकी बात पक्की हो गई। तुम वृथा आये हो। विवाहकी बात पक्की नहीं कर सकोगे।"

"यह तुम कैसे कहती हो?"

"मैं कहती हूँ।"

"लेकिन तुम भूलती हो।"

"नहीं हो सकती।"

"तो तो—!"

"हो नहीं सकती।"

इतना विश्वास! हाय, क्या सत्य इसके योग्य है? क्या सत्य ऐसे निश्छल विश्वासके साथ खेल करने चला है? ऐसे स्वर्गीय विश्वासको फुसलाकर फिर उसके साथ छल करेगा?

आह! इस कलीपर यह छल फूटेगा तो क्या हाल होगा?

बिहारी बोला, "परमात्मा करे, मैं झूठ बोल रहा हूँ। मालूम होता है, सत्य असमंजसमें है। वह शायद मेरी बहनके साथ ही शादी करनेको लाचार हो। मुझे यही दीखता है।"

"————?"

"लेकिन मालूम होता है, वह बंधनमें है। तुम उसे खोल सकती हो।"

"ओह, क्या कहते हो? मेरा बंधन! मेरा कैसा बंधन!! मैंने कब क्या बाँधा है जो खोल सकूँ! मैं क्या बाँध रखने लायक हूँ? लेकिन यह सब तुम क्या कह रहे हो? जानते हो, यह उससे कह रहे हो जिसके लिए यह बातें कहीं न कहीं सब बराबर हैं।"

"मैंने सत्यसे पूछा है। बातें की हैं। उसने सारी बातें मुझसे खोलकर कह दी हैं। अगर उसे अपनी बातका ख्याल न हो, तो उसकी खुशी, मैं जानता हूँ, किधर है।"

"उसकी खुशीके लिए मेरा तन ले लो। पर मुझसे ऐसी बात न कहो।"

बिहारी यह किसे मनाने चला है, जो बिना शर्त, बिना कारण सुने, बिना सोचे सब कुछ दे डालनेको,—सब कुछ मान लेनेको पहलेहीसे तैयार है? फिर भी तफसील देना, सफ़ाई देना, मानो काटकर फिर उसे मरहमसे भरनेका प्रयत्न करना है। लेकिन बिहारी कह ही रहा है—

२३

कड्डोके तेलसे गीले हो रहे आले-वाले कमरेमें।

"मैं दिल्लीसे सत्यके लिए विवाह-प्रस्ताव लेकर आया हूँ।"

"तो—?"

"तो तुम्हे इससे कुछ मतलब नही?"

"कुछ नहीं।"

"तुमने गरिमाका नाम सुना है?"

"नहीं।"

"मैं उसका भाई हूँ।"

"अच्छा। .."

"अभी जो थोड़े ही दिन हुए सत्य गया था तो हमारे ही साथ गया था।"

"हूँ...."

"मै वहाँसे विवाहकी बात पक्की करने आया हूँ।"

"पक्की हो गई?"

"बिल्कुल तो नहीं। लेकिन—"

"झूठ बोलते हो।"

"झूठ क्या?"

"यही कि विवाहकी बात पक्की हो गई। तुम वृथा आये हो। विवाहकी बात पक्की नहीं कर सकोगे।"

"यह तुम कैसे कहती हो?"

"मैं कहती हूँ।"

"लेकिन तुम भूलमें हो।"

"नहीं हो सकती।"

"हो तो—?"

"हो नहीं सकती।"

इतना विश्वास! हाय, क्या सत्य इसके योग्य है? क्या सत्य ऐसे निश्चल विश्वासके साथ खेल करने चला है? ऐसे स्वर्गीय विश्वासको फुसलाकर फिर उसके साथ छल करेगा?

आह! इस कष्टोपर वह छल फूटेगा तो क्या हाल होगा?

विहारी बोला, "परमात्मा करे, मैं झूठ बोल रहा हूँ। मालूम होता है, सत्य असमंजसमें है। वह शायद मेरी बहनके साथ ही शादी करनेको लाचार हो। मुझे यही दीखता है।"

"————?"

"लेकिन मालूम होता है, वह बधनमें है। तुम उसे खोल सकती हो।"

"ओह, क्या कहते हो? मेरा बधन! मेरा कैसा बधन!! मैने कब क्या बॉधा है जो खोल सकूँ? मैं क्या बॉध रखने लायक हूँ? लेकिन यह सब तुम क्या कह रहे हो? जानते हो, यह उससे कह रहे हो जिसके लिए यह बाते कही न कही सब बराबर है।"

"मैंने सत्यसे पूछा है। बाते की हैं। उसने सारी बाते मुझसे खोल-कर कह दी हैं। अगर उसे अपनी बातका ख्याल न हो, तो उसकी खुशी, मैं जानता हूँ, किधर है।"

"उनकी खुशीके लिए मेरा तन ले लो। पर मुझसे ऐसी बात न करो।"

विहारी यह किसे मनाने चला है, जो बिना शर्त, बिना कारण सुने, बिना मॉगे सब कुछ दे डालनेको,—सब कुछ मान लेनेको पहलेहीसे तैयार है? फिर भी तफसील देना, सफ़ाई देना, मानों काटकर फिर उसे नमकसे भरनेका प्रयत्न करना है। लेकिन बिहारी कह ही रहा है—

"सत्यका उतना दोष नहीं है। वह अपनी बात पूरी करे तो उसकी ाँ मर जायगी। उस .."

कट्टो निरपेक्ष—चुप।

"उसकी क्या प्रतिष्ठा रह जायगी? लोग क्या कहेगे? "

कट्टो चुप—सुन्न।

"मेरे बाबूजीसे उसे ऊँचे लोगोंसे सम्बन्ध और पैसेकी सुविधा प्राप्त ोगी। तुमसे ..?"

कट्टो सुन्न—मूर्तिवत्।

"मेरी बहिन खूब पढी है। अँग्रेजी जानती है, और बड़ी बड़ी बाते ानती है। तुम ..?"

कट्टो मूर्ति-सरीखी—जडवत्।

"मेरी बहिन उसे खूब सुख पहुँचा सकेगी। तुमसे उसे सतोष नहीं ास होगा। .. उसे खोल क्यों नहीं देती?"

कट्टो जडवत्—अचेत।

बिहारी कहे जा रहा है—

"सत्यकी माँ, सत्यकी बडाई, सुख, प्रतिष्ठा, सतोष और सत्यकी लाई . '

पर देखो देखो, कट्टो अचेत मूर्छित होकर गिरी जा रही है!

बिहारीने झट-से सँभाल लिया। सत्यपर उसे बडा गुस्सा आ रहा ै। सत्य यहाँ होता तो उसका सिर पकडकर इस कट्टोके पैरोंके पास ूलमें इतना घिसता कि बाल सारे उड जाते! हाय, कम्बख्त स्वर्गके स अछूते पारिजातकी गधको जूठा करके छोड़े जा रहा है!

कट्टोको खाटपर लिटा दिया। कुछ उपचारसे होश आया। कट्टोने ागकर देखा, कि बिहारी शुश्रूषामें लगा है।

" विहारी वावू, आप जाओ। उनसे कह देना कि अपने कामोंमें कट्टोकी गिनती न करें। मेरे पीछे उन्हे थोडी भी चिन्ता भुगतनी पड़ी तो मै अपनेको क्षमा न कर सकूँगी। मैं क्या रही, जो मेरे पीछे उन्होंने दुख भुगता! न हो, तो मैं ही उनसे कहूँगी। कहूँगी, अपनी कट्टोपर इतना एहसानका वोझ न डालो, मुझसे उठाया न जायगा, मै उसके नीचे सदा दुखी रहूँगी। इससे मेरी गिनती छोड़ दो। तुम्हारे सुखसे ज्यादे मुझे और कुछ नहीं चाहिए। उसीको नष्ट कर दूँगी तो कहींकी न रहूँगी। . विहारी वावू, आप जाओ। वडा कष्ट पहुँचाया आपको। पर कट्टो वड़ी सुखी है। वहुत दिनोंके वाद आज मालूम होता है वह कुछ दे सकेगी जो उनकी खुशीकी राह खोल दे। वड़ा सौभाग्य है कि आखिर मैं उनके किसी काम आऊँगी। उनसे कहना, कट्टोपर विश्वास रक्खें, वह उनकी वडी ऋणी है,—नहीं, मैं ही कहूँगी।"

विहारीने कहा—

" दुनियामें सभी सत्य नहीं हैं, विहारी भी है। तुम्हारी तरह पुरुष भी हैं जो विना लिये दे सकते हैं।"

" नहीं, सभी उन जैसे नहीं हो सकते। वह जो करेंगे, ठीक करेंगे। और ठीक करनेमें अपनेको वचायेंगे नहीं। देने लेनेका कुछ सवाल नहीं है।"

" लेकिन।..."

" नहीं, तुम उन्हें नहीं समझ सकते।"

इस तरह कटकर विहारी चुप खडा रह गया। इस लडकीका विश्वास, जो अव गडकर हिलनेका नाम नहीं लेता,—चाहे प्रलय आ जाय, हिमालय ढह पडे, जो अटल-अडिग खडा रहेगा।—हो जो होना हो। इस विश्वासको देखकर वह स्तंभित रह गया। कुछ देर चुप रहकर वोला—

"परमात्मासे मैं बात नहीं करता। कहूँगा तो उसे भी 'तुम' कहूँगा। क्या तुम्हें अब 'कट्टो' भी नहीं कह सकता?"

"अब जो चाहे सो कहो।....'कट्टो' ही ठीक है।" फिर हिचक कर कहा, "नहीं ठहरो, पहले उनसे मिलना होगा।"

"कुछ कहो, अब मिलूँगा तो—'कट्टो' ही कहूँगा, और तुम नाराज न हो सकोगी। बिहारीसे नाराज होगी तो वह मना छोड़ेगा। अब जाता हूँ।"

"जाओ, पर उनसे कुछ न कहना। मैं ही आऊँगी।"

बिहारी विस्मय और विक्षोभ लेकर चला गया।

२४

सत्यको बाबूजीके पत्रकी प्रतीक्षा है, इसलिए बिहारीको नहीं जाने देता। बिहारीको भी बाबूजीके पत्रकी प्रतीक्षा है, इसलिए वह ठहर है।

एक ही डाकमे दोनों पत्र आये। सत्यने अपनी डाकमेंसे बिहारीका पत्र उसे निकालकर दिया और उसकी तरफ शकासे देखा।

सत्यने अपना पत्र भी उतावले काँपते मनसे अकेलेमें खोला। पढ़ा—

"बेटा सत्य, तुम्हारा खत मिला। तुम समझदार हो, अपने लिए आप तय कर सकते हो। अगर तुम उस लड़कीका भला चाहते हो, तो मैं कैसे भी मना नहीं कर सकता। गरिमाके लिए दूसरा वर ढूँढनेमें मुझे बहुत दिक्कत नहीं होगी,—उस ओरसे निश्चिन्त रहो। लेकिन होगी यह एक बात दुःखकी। क्या मैं बताऊँ कि इस सम्बन्धपर क्यों ज़ोर मैं तुम्हारे ही कारण देता रहा हूँ। तुम्हें न जाने क्यों, बेटा मानने लगा हूँ। वैसी ही मुहब्बत करता हूँ। मेरा कुछ नहीं, पर ऐसा होगा

तो तुम्हें बड़ा नुकसान होगा। उसीका ख्याल है। तुमपर तो अब भी मैं दया करना चाहता हूँ,—मुहब्बत करना चाहता हूँ। तुम उधर फँस बैठे हो तो जाने दो। खुशी है कि इसमें मेरा कसूर नहीं, अपने अलाभके लिए अपनेको ही धन्यवाद दे सकोगे।

"सत्य, मैंने उमर यों ही न खोई। कुछ दुनिया भी जानी है। दुनिया मोमकी चीज नहीं, और न किताब ही है जिसे पढ़कर खतम कर सकते हो। यहाँ जगह जगह टक्कर खाना पड़ता है और समझौता करना पड़ता है। जीवन दायित्वका खेल है, पग-पगपर समझौता है। जो मन नहीं मार सकता, जिसे झुकना और छोटा बनना नहीं आता,—जिसे दूसरोंकी सुविधा और दूसरेको निभानेकी दृष्टिसे झुकना और राह छोड़ना नही आता,—वह जिन्दगीमें कभी कुछ नहीं कमा पाता।—जिन्दगीका संतोष भी नहीं। सत्य तुम्हे यह सीखनेकी आवश्यकता है। कोई यहाँ नितान्त स्वतन्त्र, नितान्त एकाकी नहीं है,—जो ऐसा समझता है वह दायित्वसे डरता है और कापुरुष है। सब कुछ उत्तरदायित्वोंसे बँधे हुए है उन्हे जंजाल समझो, कर्तव्य समझो,—लेकिन उनमेंसे भाग निकल छूटना न चाहो। क्योंकि भाग छूटकर देखोगे कि तुमने जीवनको रेगिस्तान बना लिया है।

"सत्य, इस वक्त तुम झमेलेमें हो। मालूम होता है कि प्रेमको जीवनमे ठीक स्थान अभी नहीं दे पाये हो,—इसीसे दिक्कत उठा रहे हो। क्या तुम उस लड़कीसे प्रेम करते हो?. मैं ऐसा ही समझता हूँ। प्रेम जो कब्जा चाहता है,—वैसे प्रेमकी छूट समाजके लिए अनिष्टकर है। प्रेममें यदि इस आधिपत्यकी आकांक्षा है—यह कि वह मेरी है, मेरी ही है, मेरी हो जाय,—तो इस प्रेममें, विश्वास रक्खो, गँदलापन है। स्वच्छ और वास्तव प्रेम इस प्रकारकी आधिपत्य-आकांक्षासे कुछ

सम्बन्ध नहीं रखता है। वह 'उस' की प्रसन्नता, उसका सुख, उसके सन्तोषकी ओर सचेष्ट रहता है,—उसपर कब्जा कर लेना नही चाहता।

"अब विवाह क्या है ? विवाह बिल्कुल एक सामाजिक समस्या है, सामाजिक तत्त्व है। तुम भूलते हो, अगर तुम उसे और कुछ समझो। उन कुछ उत्तरदायित्वोंसे, जो जीवनके साथ बँधे हैं, उऋण होनेके लिए यह विवाहका विधान है। दुनियामे क्या करना है, उसकी दृष्टिसे लाभ-पूर्ण क्या होगा, क्या नही, कुटुम्बियोंकी प्रसन्नता किस ओर है और अपना स्वार्थ किस ओर हैं,—ये सभी बातें विवाहके प्रश्नमे संश्लिष्ट हैं। 'स्वार्थ' शब्दसे घबडाओ नहीं। देखोगे तो परमार्थ शुद्ध स्वार्थ है। लेकिन मै कहता हूँ कि शब्दसे मत डरो, तथा देखो और वास्तविकताको पहचानो।

"तुम प्रसन्न होगे। जो करो उसमे मेरा आशीर्वाद समझो। मै सदा भला चाहता हूँ। तुम्हारा विवाह कब होगा, लिखना। गरिमाके विवाहमें वैसे आओगे तो जरूर ? अब मै उसे कब तक टालूँ ?—इस सालमे कर ही दूँगा। गरिमा तुम्हे नमस्ते कहती है, विपिन नमस्कार।

"मेरे उपदेशपर नाराज न होना। चाहोगे तो यह तुम्हे बहुत मदद दे सकेगा। मैंने समझा, तुम ऐसी खरी और कठिन बातें सुननेकी जरूरतमें हो।—इसी लिए लिख दीं।

तुम्हारा—भगवद्दयाल"

बिहारीको यह पत्र लिखा गया था।

"बिहारी, जानते हो, तुम्हारे पत्रके साथ मुझको भी एक पत्र मिला था। तुमने लिखा था वह सँभल गया है, लेकिन वह सँभलनेके

मार्गपर आकर अभी विढक रहा है। पर मैं साफ देख रहा हूँ, आयेगा वह उसी राहपर। तुम उससे कुछ मत कहो। एक वार इधरसे आशाका तार टूटा कि वह वेसहारा हो जायगा। तब उसे मेरे पास आये ही सरेगा। नहीं आयेगा तो वह भी ठीक होगा। तब उसे कठिन, ठोस, वे-मुरव्वत दुनियाके सामने पड जाना होगा। और यह बुरी वात न होगी। मै जो समझाकर कहता हूँ, दुनियासे वही थप्पड खाकर सीखेगा। विहारी, मैं देखता हूँ, वह तेरे जैसा विहारी नहीं है। वह मेरे जैसा सम्भ्रान्त, सभ्य, पैसे और प्रतिष्ठासे सुभीतेवाला आदमी नहीं वनेगा तो मुश्किलमें ही रहेगा। झोपड़ीमें रहकर या आवारा रहकर जीवनकी पूरी तुष्टि पा लेना उसके वसका काम नहीं है।

"तुम उसपर विल्कुल जोर न दो, आ जाओ। अगर इस विवाहके टलनेका मुझे दु.ख होगा तो सत्यके ही खातिर,—गरिमाके कारण नहीं।"

"वाकी यहाँ सव ठीक है।

तुम्हारा—वावू"

२५

सत्यको इस खतकी एक एक वात मान्य होने लगी। कट्टोको वह प्यार करता था,—यह वह अब मान लेनेको तैयार है। इस प्रेमके ही कारण वह उसकी रक्षा करना चाहता था और अपनी वना लेना चाहता था। जहाँ यह 'अपनी' वना लेनेकी कामना है,—वह प्रेम उपादेय नहीं है। अव इसमें सत्यको संशय नहीं रहा।

फिर दूसरी भी तो वात है। प्रेम जीवनको वहलानेकी वस्तु तो वन सकती है, लेकिन जीवन उसके लिए स्वाहा नही किया जा सकता।

जीवन तो दायित्व है, और विवाह वास्तवमे उसकी पूर्णताकी राह,—उसकी शर्त। इस दायित्वसे एक ख्याल—एक भावनामें बहकर कैसे छुट्टी पाई जा सकती है? प्रेमको इस दायित्व-पूर्ण विवाहकी बातमे कैसे दखल देने दिया जाय? जीवन प्रेमसे ज्यादे महत्त्वकी,—ज्यादे ऊँची और पवित्र चीज है। प्रेम,—जो अन्तमे केवल एक आवेश—एक भाव है, उसपर जीवन कैसे निछावर कर दिया जाय? वकील साहबकी यह बात उसे स्पष्ट अमिट सत्यकी नाईं लग रही है। मानों यह जिस आधारभूत जीवन-सिद्धान्तपर पहुँचनेका अबतक प्रयत्न कर रहा था,—वह जगह जहाँ पैर टिके और जहाँ पक्की नीव बाँधकर जीवन खड़ा किया जा सके,—वह मानों उसे मिल गया। अब उसके बारेमें भूल नहीं करेगा। अब उसे साफ दीख रहा है—अबतक जिन बातोंको ठीक समझकर वह अपनेसे चिपटता था, वह कोरे शब्द थे,—कोरे भाव। उनपर दुनिया नहीं टिक रही है। जो वकील साहबने लिखा,—"वह है जिसको केन्द्र मानकर दुनिया चल रही है, और व्यक्तिको चलना चाहिए। जीवन एक दायित्व है,"—कैसी सुन्दर बात है, कैसी अच्छी लगती है! और वह दायित्व है किसके प्रति?—संसारके प्रति, संसारकी उन्नतिके प्रति!

बिहारी होता तो कहता, "—अपने प्रति, अपने अन्तःकरणके प्रति।" विनोदशील बिहारी और विचारशील सत्यमे यही अन्तर है।

लेकिन सत्यके लिए पत्रके उत्तर-पैराग्राफ तो ठीक हैं, पहला गड़बड़ है। यह बात उसके अहंभावको चुटकियाँ ले रही है कि यह विवाह उलट गया तो उसकी ही मुश्किल है, गरिमाकी नहीं—यह कि उसी-पर दयाकर वह अबतक इस सम्बन्धपर जोर दे रहे थे। लेकिन [illegible] है तो बात ठीक ही है। गरिमाको, जब चाहा तब, उसने [illegible] डालनेमें

अच्छा वर प्राप्त हो सकता है, और उसके विना वकील साहवके जीवनमें कोई अभाव, कोई अपूर्णता नहीं पैदा होती। जब कि इधर तो सत्यके लिए आगे कुछ दीखनेका मार्ग ही बन्द हो जाता है।

पर, विल्कुल निराश हो बैठनेकी अभी वात नहीं है।

वह कमरेमें आया। विहारी वहीं बैठा है। वावूजीका पत्र पाकर सत्यके प्रति उसका आदर बढ गया है। उस पत्रसे विहारीने देखा कि सत्य अब भी अपनेसे झगड़ रहा है, हार मान नहीं बैठा। और अपने आपसे वरावर लडते रहना ही तो जीवनमें एक कीमती चीज़ है!

लेकिन विहारीको यह नहीं मालूम कि सत्य हारको हार नहीं मान रहा, वह लडाईसे विमुख होकर इस कीमती लडाईको विल्कुल व्यर्थ चीज ठहराकर स्वीकार कर रहा है।

विहारीने कहा—आओ भाई सत्य, मेरा धन्यवाद लो।

"धन्यवाद कैसा?"

"पता चला है कि मुझसे कहनेके वाद भी तुम कट्टोके वारेमें विल्कुल लापर्वाह नहीं वन चुके थे।"

"हाँ, वावूजीको कुछ ऐसा ही लिखा था। लेकिन...."

"लेकिन?..."

"लेकिन जीवन एक दायित्व है..."

"फिर?"

"और .और प्रेम एक अस्थायी भावना। जीवनके स्थायित्वको अस्थायी भावनाओंका आधार नहीं काम देगा।"

"सीधी सादी हिन्दी भी क्या काम नहीं देगी? भई, ऐसे तो वात करो जो यह विहारी समझ जाय! जीवनका स्थायित्व कैसा?—क्या

जीवन स्थायी चीज है ? यानी संसारमें बिताये जानेवाले ये पचास-साठ-सौ साल ?—स्थायित्वकी परिभाषाकी हद क्या सौके अंक तक ही है ?"

"गलत मत समझो। जीवन स्थायी है, उसे एक दिशाकी ओर ही बढ़ते रहना चाहिए,—यही उसका स्थायित्व है।"

"..और यही आपका पांडित्य है !"

"बिहारी, तुम यह नहीं समझते, इसमें मेरा क्या दोष ? अपनेको टटोलता हूँ, तो देखता हूँ कि कट्टोकी ओर मैं उस भावसे खिंच रहा हूँ जिसे प्यार कहा जाता है। यह प्रेम एक भाव है, और भाव पैदा होने और मिटनेके लिए होता है। अर्थात् यह क्षणस्थायी है। अब विवाह एक टिकनेवाला सत्य है, दायित्वका अंश है। प्रेमको उसमें दखल देने देना ठीक नहीं होगा।"

"और सब कामोंमें बहुत ज्यादे अकलको भी दखल देने देना ठीक नहीं होगा।— तो आपने इतने दिनोंमें यह उधेड़-बुन की है ? और आपको मालूम है इन दिनों आपकी कट्टो क्या करती रही है ? वह आपको ध्याती रही है और आपको मन ही मन परमात्मा बनाती रही है।"

"लेकिन मैं क्या करूँ ? प्रेममें जहाँ कब्जेकी इच्छा है, वहां मैल भी है। क्या इस मैलका काबू स्वीकार करूँ ?"

"नहीं जी, सो क्यों ? विशुद्ध विशुद्धताको ही स्वीकार करो। वह क्या है, जानूँ तो ?"

जिस बातको मानकर दुनिया खड़ी है, जिस दुनियाकी नींवको हम और तुम नहीं बदल सकते, उसको हिलानेकी कोशिश करनेके बजाय हम मजबूत करनेमें सचेष्ट हों तो ज्यादे कार्यकर हो सकते हैं। और वह आधार-भूत तत्त्वकी बात यह है कि कोई नितान्त स्वतन्त्र नहीं है

सब ही उत्तरदायित्वोंमें बँधे हुए हैं। उन्हींमें उनका मोक्ष और कृतार्थता है।

"बहुत ठीक। आपके जीवनका एक उत्तरदायित्व है गरिमाका पति होना। बहुत सुन्दर—और आगे ?"

"बिहारी, तुमने अभी दुनियापर हँसना ही सीखा है। इसमें कुछ नहीं लगता। पर उसे समझना मुश्किल है। सो तुम्हे बाकी है।"

"ओहो, एक ही क्षणमें आप दुनियाको समझ बैठे! ऐसी दुनियाकी समझ आपको मुबारिक और उस समझके बाद रोना मुबारिक। मुझे तो परमात्मा मेरा हँसना ही दिये रक्खे।"

"बिहारी, तुम अभी नहीं समझोगे। जाने दो।"

"ठीक है, आप समझ गये। ऐसे विशाल गहन तत्त्वकी बात बिहारीके इस हल्के-से हँसोड़ दिमागमें नहीं आवेगी। लेकिन अब बताइए, क्या ठीक रहता है ? क्योंकि दुर्भाग्य कहो या सौभाग्य,—या दोनों हो, वह आपकी दायित्वपरिणीता गरिमाका भाई है। और आपके निर्णयको सुनकर घर पहुँचानेका कर्तव्य उसपर आ पड़ा है।"

"बिहारी, बाबूजीकी जो इच्छा है, माँ जिसके लिए कबसे जोर दे रही हैं, जिसमें तुम भी और गरिमा भी शायद हृदयसे सहमत हैं,— उसे मैं नहीं टालूँगा। बड़ोंकी बात मानूँगा,—उनका आशीर्वाद खो न सकूँगा।"

"शुभमस्तु।. .लेकिन बिहारी श्री सत्यधनजीको एक सूचना देना चाहता है। कट्टो उनसे मिलने आया चाहती है।"

खिड़कीमेंसे कट्टोको आते बिहारीने देख लिया है।

"एक निवेदन और है," बिहारीने कहना जारी रक्खा "कट्टोकी संस्कृत शिक्षा अगाध नहीं है। उसने अभी विश्वकी फिलासफी भी नहीं रटी है। इससे उसके सामने श्री सत्यधनजी संस्कृत फिलासफी ज्यादे

न बखेरें। कहीं वह समझ न सके और उन्हे परमात्मासे भी ऊँचा मानने लग जाय। कट्टोकी जरा भी पर्वाह करते होंगे, तो विश्वास है सत्यजी मेरा अनुरोध टालेंगे नही।"

तभी कट्टो दरवाजेमें आई।

२६

कट्टो दरवाजेमें आई,—बिहारी चलने लगा।

"नहीं, जाओ नहीं।" कहकर कट्टो सत्यसे कुछ हाथके फासलेपर खड़ी हो गई।

सत्यपर उसकी आँखें पड़ रही हैं। उनमें कैसा भाव है! जैसे एक अकिंचन अनुग्रहीता किंकरी उनकी पदधूलिकी भीख लेने आई है,—बस और कुछ नही।

"तुमने इनका परिचय मुझे क्यों नहीं बतलाया?" कट्टोने सत्यसे कहा

"बताया तो ..."

कट्टोने शरारत-भरी मीठी-सी हलकी-सी एक हँसी हँसकर कहा—

"किस कामके लिए आये, सो तो ..।"

इस समय सत्यको फिलासफीके टेकनकी बहुत सख्त जरूरत है, क्योंकि मन गिरता जा रहा है और उसे इसी टेकनपर टिकाकर मजबूत रखना होगा। अच्छी तरह इस तत्त्वज्ञानकी टेकनको जमा जमा कर उसने कहा—

"वह बिहारीने खुद ही कहनेका जिम्मा ले लिया था।"

कट्टोको मास्टरका यह पक्कापन बड़ा अच्छा लग रहा है।—

"सो इन्होंने ही तो घर आकर सब बताया।"

अब सब चुप।

फिर कुछ देरसे कट्टोने ही कहा—

"तो हमारी जीजीको कब लाओगे?"

इस कल्पनातीत बात,—इस अनोखे दावके आगे तत्त्वज्ञाकी सुसन्नद्ध शब्द-सेनाके रहते भी सत्य सिट्टी भूल गये। चुप रहे, कुछ उत्तर न बन पड़ा।

"बोलो, कब आयेगी हमारी जीजी?"

धीरे धीरे अपने पक्षका भान इन्हे हुआ। इच्छा-शक्तिको कड़ा किया, हठात् हँसकर बोले—तुम चाहती हो, मैं जीजी लाऊँ?

"वाह, नहीं चाहती? जो तुम चाहते हो, सो सब चाहती हूँ, मेरा परमात्मा जानता है।"

इस अबोध प्रतिपक्षीके आगे ज़ोर लगाकर तैयारी की हुई सत्यकी सेना कुछ काम नहीं दे सकेगी। सत्य फिर जैसे खो गये, जैसे वह आधार मनके नीचेसे खिसकने लगा और मन धँसकने लगा।

"इन बिहारी बाबूने मुझसे कहा था कि तुम्हे मेरी जरूरत पड गई है। भला मैं सोच सकती थी, कभी मेरी भी जरूरत पड़ जायगी! अब हाजिर हो गई हूँ। बोलो, सामने खड़ी हूँ। मै तो तुम्हारी ही हूँ। मुझसे बोलते, मुझसे माँगते डरते हो? जैसे परायेसे कुछ माँग रहे हो? छि:—सो नहीं। तुम्हारे काम नहीं आई, तो हुई ही क्या?"

बोले जाओ कट्टो, मास्टरजी तो अचरजसे तुम्हारी सब बात सुन रहे हैं। ज़ुबान उनकी जकड गई है और डरके मारे हिल नहीं सकती।

"जो कुछ भी तुम चाहते हो सबमें कट्टोकी खूब राय है। कट्टो भी उसे खूब चाहती है। उसका पूरा पूरा विश्वास रक्खो। तुम्हारी खुशीमे उसकी खुशी है। तुम्हारे सोचमें उसकी मौत है। अपने कामोंमें कट्टोकी गिनती मत करो,—वह गिनने लायक नहीं है। उसकी खुशी तुममें शामिल है। बस तुम व्याह करना चाहते हो, कट्टो तुम्हारी सबसे

पहले तुम्हारा ब्याह चाहती है। ओहो, वह कितना खुश होगी, खूब खूब खुश होगी। तुम कट्टोको क्या समझते हो ?—वह तुम्हारी नाखुशी लेकर जिन्दा रह सकेगी ?—और क्या समझते हो कि वह तुम्हे समझती ही नही ? वह तुम्हे खूब समझती है। तुम जो करोगे, अच्छा करोगे, और कट्टो उस अच्छेमें खूब आनन्द मनायेगी। तुम तो कट्टोके मालिक हो,—फिर उसकी फिकर क्यों करते हो ? ."

सत्य सफेद-फक हुए खड़े हैं। विहारी एक कोनेमें मुँह फिराकर न जाने क्या देखता खड़ा हो गया है।

"अरे, ऐसे खड़े हो ? क्या गुम्मा-सुम् विहारी वाबू।" अन्तिम शब्दोंके निकलते निकलते निगाह विहारीकी ओर फिरी, "अरे, यह विहारी वाबूको भी क्या हो गया है ? .."

विहारीको क्या हो गया है, कुछ नहीं। वह तो हँसता हुआ बढ़ा आ रहा है। आँखें लाल हैं, गाल धोखा देकर भेदकी बात कहनेको रहे हैं,—फिर भी विहारी हँसता बढ़ा आ रहा है। सामने आकर बोला—

"यह हाजिर है, विहारी बाबू।"

"तुम्हे कौन-सा भूत चढ़ता है, विहारी बाबू ?"

"मुझे तो एक ही भूत चढता है,—हँसीका। वह जब सामने कहीं जाता है, तो मुझे मुँह छिपाकर खड़ा हो जाना पड़ता है।"

"देखो, यह मुझसे बोलते नहीं। इनपर क्या भूत चढ़ गया है, विहारी बाबू ?"

"चढा भी होगा तो उतर जायगा। अब वह नहीं चढ़ेगा। इन्होंने एक देवीकी आराधना की है। तुम नहीं जानतीं उसे। उसका

नाम है फिलासफी। वह ऐसे ऐसे भूतोंको पास नहीं फटकने देती। मेरेवाला भी उस देवीसे बहुत घबड़ाता है।"

"इनको बुलाओ तो .."

"चेष्टा करता हूँ। पर सम्भव है इनके मुँहसे अभी वह देवी ही बोल उठे। तब तो उसकी बात शायद है कि आपके समझमें न आये। पर आप घबड़ायें नहीं,—समझनेके लिए हैरान न हों, क्योंकि वे बाते विरलोंहीकी समझमें आती हैं।"

इतना कहकर बिहारीने सत्यके कानमें गुनगुना दिया, गडबड करोगे तो गरिमा गई, कट्टो चढी! तब तो गजब हो जायगा! चेत उठो।"

सत्य एकदम झल्ला पड़े—बिहारी, चले जाओ तुम यहाँसे!

बिहारीने फरियादके ढगसे कट्टोसे कहा—

"भूत तो भागा, पर साथ ही मुझे भागना पड़ता है!—यह क्या न्याय है?"

"बिहारी बाबूको रहने दो न।" कट्टोने मानो निर्णय देते हुए कहा, "उन्हें क्यों भेजते हो?"

सत्य अब फिर चुप।

कट्टोने कहा, "बोलो। बोलोगे नहीं?"

चुप।

"बोलोगे नहीं, तो मैं जाऊँ?"

"— —"

"जाऊँ?"

"जाओ।"

तब एक बात कहती हूँ। एक,—बस एक। उसे स्वीकार करना ही पड़ेगा। करोगे?"

" कहो।"

" करोगे?—कहती हूँ, तुम्हारा उसमें कुछ नहीं जायगा। कहो,—करोगे।"

" करूँगा।"

" जीजी आयेगी तो पहले मेरे यहाँ खायेगी। मैं पहले खिलाऊँगी,—चाहे कुछ हो, मैं खिलाऊँगी। न होगा तो तुम्हारे घर आकर मैं बनाऊँगी। पर पहली रोटी वे मेरे हाथकी खायेंगी। इतनी अरदास मेरी कबूल रखनी होगी। कहो, हाँ।"

सत्यने अपना सारा बल कण्ठमें खींचकर कहा—'हाँ।'

इस 'हाँ' को सुनकर कट्टो पत्थरकी मूर्ति-से खड़े सत्यके पैरोंमें जाकर लोट गई।

एक बार और लोटी थी। तब शाम थी, अब दोपहर है। तब स्वर्गके द्वार खोले गये थे आमन्त्रणपूर्वक, अब आमन्त्रित कट्टोके मुँहपर ही ढाँप दिये गये हैं। खुले थे तब भी वह इन पैरोंमें लोटी थी, बंद कर दिये गये हैं तब भी वह इनमें ही पड़ी है। उसकी यह कैसी समझ है।

कुछ देर सन्नाटेके बाद आवाज आई—जाऊँ?

सत्यने भरी आवाजसे कहा—जाओ।

" जाऊँ?"

" जाओ।"

तब वह कट्टो उठी। आँसू ढरकना बंद हो गया है, मे[illegible] बाद [illegible] चाँदनी मानो मुँहपर खिलनेको हो रही है,—वह अब तारों भरी [illegible] कट्टोकी किरणकौमुदी मानो हँस देगी। बोली—बिहारी बाबू, [illegible] साथ चलोगे? कान है।

बिहारी बाबू मानों जग उठे, फिर भी अधजगेसे कट्टोके पीछे पीछे चल दिये।

२७

वही कमरा है, वही आला है, वही कट्टो है। फिर भी वही नहीं है। उसी कटोरेमें वैसा ही सफ़ेद दूध है,—पर जैसे जादूका फूँक फेर दिया गया है, और वह दूध नहीं हालाहल है। इस कमरेकी स्मृति, यह सामनेका आला जिसमें उस दिनका छः पैसेका दर्पण रक्खा है और वह कघा और टिकुलीकी डिब्बिया,—मानो सब उसको चिढाते हुए उससे कह रहे हैं, 'तुमने हमें धोखा देकर रक्खा है, हम पराये हैं। पराये हैं!' स्मृतियाँ उमड़ उमड कर कह रही हैं 'तुम स्वप्नकालमें हमसे खूब खेलीं। अब तुम्हे जगा दिया है, अब हम जाती हैं। जाती हैं,—कहीं और।' वह सब अँगूठा दिखा दिखा कर मानो कह रही है, 'कहीं और! कहीं और!!' जो अभी बीते क्षण तक सत्य था, वह सब कुछ इन स्मृतियोंका साथ देकर उसे चिरा रहा है, जा रहा है, कहीं और, कहीं और!!!'

ठठोली करते हुए, पराये दिखते हुए, इस कमरेमें ही बिहारी खड़ा है।

कट्टोने अब बिहारीको देख पाया,—ऐसे विस्मित-चकित भावसे देखा मानों पूछना चाहती है, 'तुम कौन हो, क्यों आये?—क्या चाहते हो?' बिहारीने निस्संकोच 'कट्टो' का हाथ अपने हाथोंमें लेकर कहा, "मैं गरिमाका भाई हूँ। समझी कौन हूँ? अब 'कट्टो' के सिवाय कुछ नहीं कहूँगा।"

"जो चाहे कहो बिहारी बाबू, तुम उनके मित्र हो, और मेरे लिए सब कुछ हो।"

बिहारीने बड़ी तीक्ष्ण जिज्ञासा, बड़ी आशंका, बड़ी आकांक्षासे पूछा—

"कट्टो अब क्या ...?"

"पहले एक थे, अब दो हो गये हैं। दोकी सेवा करूँगी। मेरा तो काम और बढ़ गया है।"

बिहारी कहना चाहता है, सत्य इस योग्य नहीं है। पर सामने खड़ी इस भक्तिनके आगे मूर्तिपर हाथ रखते डर लगता है। कट्टोकी खातिर वह सत्यको कब कुछ न कहेगा।

"सत्य अब तुम्हारी सेवा नहीं लेगा, कट्टो। न तुम्हारी जीजी यह होने देगी।"

"न सही, मेरा काम मेरा काम है। तनसे नहीं तो मनसे तो करूँगी ही।"

इसी क्षण भीतर कुछ उठा और बिहारीके शरीर और आत्माको एक रंगमें रंग गया। परमात्माने हम दोनोंको साथ ला दिया है,—अब दोनों धाराएँ एक होकर बहेंगी, उनका कुछ और काम न होगा। अपनी संयुक्त-जीवन-धारापर किनारे किनारे तीर्थ स्थापित करें और यह पुण्य-गंगा गंगाकी तरह लोकमें बहती निकलती चली जाय,—कल्याण सरसाती हुई, खेतीको हरियाती हुई, लोगोंको नहलाती हुई लहराती हुई अनन्त सागरमें विलीन हो जाय। बिहारी एक क्षण इस लोकान्तर भावनाके प्रबल प्रस्फुटनमें आत्मसात् हो गया। फिर बोला—

"कट्टो, एक साक्षात्कार हुआ है।..."

यहाँ उनका कण्ठ काँप गया और सुर लरज आया।

"बिहारी बाबू! ..

वह भी इतना कहकर चुप हो गई। रुककर फिर कहा—

"यह न समझो, मैं तुम्हें गलत समझती हूँ। तुममें तो कुछ माग-

झनेको है ही नहीं। जो बाहर है, वही भीतर भी है। भीतर वही विनोदका झरना झरता रहता है, जिसका आधा जल आँसूका और आधा हँसीका है, और जिसमेंसे हर बात आर-पार दिखाई देती है। लेकिन अनहोनी घट नहीं सकती, होनी टल नहीं सकती। जो हो गया, हो गया। उसे मिटाना अब बससे बाहरकी बात है। जो चढ़ चुका,—उसे चरणोंमें वापिस खींच नहीं ला सकती। वह अब मेरा नहीं रह गया। लेकिन...”

“लेकिन....?” बडी व्यग्र उत्कंठासे बिहारीने कहा—

“लेकिन एक बात है। सोती हूँ तो आकाश-गंगाको ऊपर खिल-खिलाते देखती हूँ। वह हमपर नीचेको देखती रहती है। हमारी जगतकी यह गंगा भी ऐसे ही ऊपरको देख देखकर बहती है और हँसती रहती है। लगता है कि ये दोनों गंगाएँ एक दूसरेको देख देख कर ही जीती हैं। इस सारे अनन्त शून्य,—किसी गणनामें न आ सकनेवाले आकाशको भेदकर इनकी हँसी एक दूसरेको परस्पर कुशल-क्षेम दे आती है। दोनोंका मन एक है, नियम एक है। मालूम होता है, दोनों आपसके समझौतेसे इतनी दूर जा पड़ी हैं कि दोनों एक ही उद्देश्यको दो जगह पूरा करें। दूर हैं, फिर भी पास हैं। अलग हैं, फिर भी एक हैं। बिहारी बाबू.. बिहारी बाबू, क्या यह नहीं हो सकता?—क्या हम भी दो ऐसे नहीं हो सकते? दूर, फिर भी बिल्कुल पास। अलग, फिर भी अभिन्न। दो, फिर भी एक। एक ही उद्देश, एक ही जीवन-लक्ष्यमें, पिरोये हुए?”

बिहारीने कहा—कट्टो!...

कट्टोने कहा, “आओ, मेरे साथ बँधते हो? मैंने तुम्हे देखा, तुमने मुझे देखा। तुमने मेरी भाषा भी देखी, भाव तो देखे ही। ‘वह’ नहीं

जानते मैं कितना पढ़ गई, कोई भी नहीं जानता, मैं भी नहीं जानती थी। अभी जानी हूँ, जब तुम जाने हो। इतनी हिन्दी जाननेके बाद कुछ करोगे तो तुम्हे भी मदत पहुँचा सकूँगी। इतनी भाषा, धर्मोंके बाद, मुझे रोटी भी दे ही देगी। इस तरह, पढने लिखनेके लिहाजसे भी तुम्हे मुझपर शर्म करनेकी जरूरत नहीं। बोलो, बँधते हो ?"

"भाडमे फेंको पढनेको।..बँधता हूँ।"

"बिहारी बाबू, बडा कठिन यज्ञ सम्पन्न करनेके लिए बँधते हैं हम सोच लो तुम। बहुत लम्बा जीवन आगे पड़ा है...।"

"तुम मुझमे छोटी हो। तुम्हारे लिए व्रत और कठिन.. "

"मुझपर तो आ पड़ा है, पर तुम "

"कट्टो, बँधता हूँ ।"

"इस यज्ञके लिए सबसे सुन्दर शब्द है मेरे पास 'वैधव्य'। अर्थ 'आत्म-आहुति।' बँधते हो ?"

"बँधता हूँ।"

कट्टोका बायाँ हाथ बढ़ा, बिहारीका दायाँ। दोनों एकमें गुथ गये।

"हम दोनों वैधव्य-यज्ञकी प्रतिज्ञामें एक दूसरेका हाथ लेकर आजन्म बँधते हैं। हम एक होंगे,—एक प्राण, दो तन। कोई हमे जुदा नहीं कर सकेगा।"—कट्टोने कहा।

"हम दोनों वैधव्य-यज्ञकी प्रतिज्ञामें एक दूसरेका हाथ लेकर आजन्म बँधते हैं। हम एक होंगे,—एक प्राण दो तन। कोई हमे जुदा नहीं कर सकेगा।" बिहारीने दोहरा दिया।

कट्टोने कहा—

"आज मेरा विवाह पूर्ण हुआ। वैधव्य सार्थक हुआ।"

बिहारीने कहा—

"यह महाशून्य साक्षी हो, हम कट्टो-विहारी सदा एक दूसरेके प्रति कट्टो-विहारी रहेंगे, न कम न ज्यादे।"

फिर विहारीने कहा, "कट्टो, कहो, जो दूँगा, लोगी।"

"जो दोगे, लूँगी।"

कुछ देर वह चुप रहे। फिर कट्टोने थोड़ा हँसकर कहा—

"हमारे जीवनका अकेलेपनसे अनायास इस तरह उद्धार हो गया। अब आओ, मेरा एक काम करो। तुम घर कब जा रहे हो?"

"आज रात, नहीं तो कल सवेरे जरूर।"

कट्टोने तिसपर टिकुलीकी वह डिबिया ली, कघा और शीशा, और हाथोंसे वह दो लाल चूड़ियाँ निकालीं, उन्हे एक पोटलीमें बाँध दिया, कहा—

"तुम्हारी बहिन,—क्या नाम है?—गरिमा। वही मेरी जीजी। उन्हे यह जाकर देना। कहना—एक कट्टो है, नटखट लड़की, गँवारिन, उसने ये दी हैं। वह उसके मास्टर रहे हैं और वह उसकी जीजी हैं। कहना मैंने उनसे वायदा ले लिया है, पहले जीजीको मेरे यहाँ खाना होगा। यह भी कहना, कट्टोको उन्हे अँग्रेजी पढानी होगी। और कहना, कट्टोको असीस भेजें। सेवकाईका मौका मिलेगा, एक बार तो उससे पहले भी आशीर्वाद दे ही दें।.. यह सब कहोगे न? कहो—कहोगे।"

"जरूर कहूँगा, और कहूँगा, यह सुहाग कट्टोका उतरन है—।"

"है है। यह क्या कहते हो? यह तो मैंने जबरदस्ती चढा लिया था। उतरन कैसे हुआ? नहीं नहीं, बिल्कुल नहीं। मेरे पास शुभसे शुभ जो चीज है, दे रही हूँ।"

"सब कहूँगा। और कहूँगा, कट्टोके साथ मेरा वरण हो चुका है।"

"कह देना।"

"तो मेरा काम हो चुका?"

"हाँ।"

"जाऊँ?"

"जाओ,—माँके पैर छूते जाना।"

"जानेसे पहले कुछ दोगी नहीं?—यह अच्छा वरण!"

"क्या दूँ?"

"कुछ भी तो—"

"अच्छा लो.."

तभी उसने एक आसनपर बैठकर झट-से चर्खेपर सूत काता। हल्दीके रंगमें उसे रंगकर माला बनाई। दोनों हाथोंसे वरमालाके रूपमें पकड़ा, धोतीका छोर जरा आगेको किया, और एक खड़ी मीठी ढंगी ...के विहारीके गलेमें डाल दिया। फिर एक नमस्कार किया, चरणोंमें हाथ लगाया और फिर उस हाथको अपने माथेसे छुआ लिया।

इस समारोहमें बस उस कमरेकी स्तब्ध शून्यताने मानो अपनेको खोकर मौन योग दिया। बाहरी आँखें इस शुचि व्यापारपर पड़नेसे बची रहीं। इस ग्रंथि-बंधनकी एकमात्र साक्षी होकर अचर-प्रकृति मानो जी ही-जीमें मग्न मूक थी।

"माला सबको दिखाऊँगा।" विहारीने मन्त्र-बद्धताको तोड़कर कहा।

"तुम्हारी है, जो करो।"

"जाता हूँ; कब मिलना होगा?"

"देखो—"

"अच्छा, कट्टो, प्रणाम। विहारीका प्रणाम। प्रणाम लो और यह लो।" एक बुरी तरह गुड़ीमुड़ी हुआ कागज थमाकर विहारी निकला, माँकी चरण-रज ली, रुका नहीं, चला गया।

सौ रुपयेका नोट खोले कट्टो कुछ सेकिंड खोई-सी खड़ी रही, फिर चौकेकी सँभालमें चली गई।

२८

विहारी अपने घर पहुँचा। बाबूजी बैठकमें ही बैठे है।

ताँगेसे उतरा नहीं कि पूछा, "आ गये! .." अर्थात्–'क्या लाये?'

"हाँ, आ गया।"

"क्या बात रही?"

"अभी आता हूँ, जरा यह सामान....ऊपर .."

"हाँ हाँ।"

बाबूजीने देखा कि सामान नौकर ले ही जा रहा है, एक मिनटको तो यहा बैठ ही सकता था, बात करनेमें देर लगती कितनी है, पर नहीं, ऊपर!.. खैर, लक्षण बुरे नहीं है।

बाबूजीसे बात तो कहेगा ही, पर कट्टोका काम ख़त्म करनेकी उसे जल्दी है। सबसे पहले कट्टो, फिर और कोई। जरा सी तो पोटली है, जेबमे डालकर ऊपर पहुँचा। पुकारा—"गिरी!—गिरी! .."

गिरो चौकेमे है। बाल सुखा-सुखू कर अभी गई है देखने कि महाराजिन सब कुछ ठीक कर रही है या नहीं। महाराजिनको इतना कह चुकी है, फिर भी कुछ न कुछ गडगड़ हो ही जाता है। गरिमाको क्या वह जानती नहीं है? ठीक नहीं करेगी तो दिल्लीमें महाराजिनोंकी कमी पड़ी है? सो ही बात गरिमा अब बारहवीं बार

महाराजिनके कानके रास्ते अकलमें प्रवेश कर देनेको बढ़ी पहुँची है। मोटी, फूले नथनोंवाली, सागके बाजारमें जो सब कुंजड़ोंसे बाजी ले जाती है, वही कुसलो इस छोटी मालकिनके सामने थर-थर काँपती है। इस देहके कम्पनमें अगर नोन बटलोईमें गिरते गिरते खीरकी पतीलीमें पड़ जाता हो तो पाठक अचरज न करेंगे और उसे क्षमा कर देंगे। लेकिन जिन्हे वह खीर खानी पड़ती है, उन सबके रोषकी सम्पूर्ण स्वत्वाधिकारिणी प्रतिनिधि होकर जब वह छोटी मालकिन नागिनकी तरह चमकती और फुफकारती महाराजिनके सिरपर आ खड़ी होती है तो अगर नोन खीरमें नहीं पड़ता तो मिर्च दालके बजाय आँखमें पड़ जाती है। तब महाराजिन खाँसी और छींकसे व्यग्र होकर अपनी सफाई देनेमें अक्षम हो जाती है और छोटी मालकिन भी अपने गुस्सेको आधा निकला हुआ और आधा पेटमें ही खौलता हुआ लेकर वापिस पलायन कर जाती है। तब वह छींकती भी जाती है और झींकती भी जाती है। ऐसा ही साधारण संयोग इस समय भी घट गया था। छींकमें उसने भैयाका आना सुना। तभी सिचांहुति चूल्हाग्निमें छूट गई। और तभी वह बाहर दौड़ी और तभी बोली—

"मैं . छिः—छीं .. भैया ...छिं ...."

भैयाने यह अपनी अगवानीपर लगातार छींकोंकी सलामी सुनी।

"यह क्या मामला है ?"

"वह कम्बख्त—आक छिं', इस....छिं ..."

"यह छिं' और सुशब्दोंकी बौछार मेरे आते ही "

"यह डैम् रैस्कल ..आ ..आ क . छिं .."

"मुझे माफ़ करो, मैं चला जाता हूँ भई।"

"शैतान, कलसे ही ..छिः छिः... छिः....छिः..."

छींकोंका प्रकोप शांत हुआ तब बिहारीने संबोधन किया—

"गिरी .."

"वह महाराजिन कलसे नहीं रह सकती। मैं कहती हूँ...."

"मेरी बात सुनती हो या .."

"सुनती हूँ लेकिन तुमने ही..."

"हाँ, मैंने ही सृष्टि रची, और मैं ही बिगाड़—"

"तुमने ही यह महाराजिन रखवाई थी।"

"अब दोष नहीं होगा, तो। बस, अब तो स्वस्थ हुईं?—या अब .."

"स्वस्थकी बात नहीं, कोई न कोई गड़बड़ कर ही देती हैं।"

"अच्छा, अब इस अध्यायको खतम करो। प्रकोप पर्व समाप्त, नवीन पर्व आरम्भ। सुनो—"

सारी आकृति और चेष्टामें 'सुनाओ—' का भाव लेकर वह सुननेको हो गई।

"मैं वहाँसे आ गया हूँ। तुम्हारे लिए सोहाग-कोथली ले आया हूँ। लो।"

बिहारीने वह पोटली खोलकर गरिमाके आगे फैला दी।

"किसने दी?—उस. ..?"

"हाँ उसने ही। जानती तो हो उस कट्टोको?"

गरिमा कट्टोको खूब जानती है। सत्यका रुख अब तक खूब समझती जा रही थी। जानती थी,—जडमें कट्टो ही है। यह जानते ही उसने उसे अपने प्रतिद्वंद्वीके रूपमें स्वीकार कर लिया था। बाबूजी और सब जोर लगा रहे हैं, तब भी वह रुख अनमनाया ही हुआ है—

महाराजिनके कानके रास्ते अकलमें प्रवेश कर देनेको वहाँ पहुँची है। मोटी, फूले नथनोंवाली, सागके बाजारमें जो सब कुँजड़ोंसे बाजी ले जाती है, वही कुसलो इस छोटी मालकिनके सामने थर-थर काँपती है। इस देहके कम्पनमें अगर नोन बटलोईमें गिरते गिरते खीरकी पतीलीमें पड़ जाता हो तो पाठक अचरज न करेंगे और उसे क्षमा कर देंगे। लेकिन जिन्हे वह खीर खानी पड़ती है, उन सबके रोषकी सम्पूर्ण स्वत्वाधिकारिणी प्रतिनिधि होकर जब वह छोटी मालकिन साँपिनकी तरह चमकती और फुफकारती महाराजिनके सिरपर आ खड़ी होती है तो अगर नोन खीरमें नहीं पडता तो मिर्च दालके बजाय आँचमें पड जाती है। तब महाराजिन खाँसी और छींकसे व्यग्र होकर अपनी सफाई देनेमें अक्षम हो जाती है और छोटी मालकिन भी अपने गुस्सेको आधा निकला हुआ और आधा पेटमें ही खौलता हुआ लेकर वापिस पलायन कर जाती है। तब वह छींकती भी जाती है और खाँकती भी [illegible]ती है। ऐसा ही साधारण संयोग इस समय भी घट गया था। [illegible]केमें उसने भैयाका आना सुना। तभी मिर्चाहुति चूल्हाग्निमें छूट गई। और तभी वह बाहर दौड़ी और तभी बोली—

"मैं....छिः–छीं: ...भैया....छिं ...."

भैयाने यह अपनी अगवानीपर लगातार छींकोंकी सलामी सुनी।

"यह क्या मामला है ?"

"वह कम्बख्त—आक् छिंः, डैम....छिंः ..."

"यह छिंः और सुशब्दोंकी बौछार मेरे आते ही...."

"यह डैम् रैस्कल...आ ..आ .क् ...छिं ..."

"मुझे माफ़ करो, मैं चला जाता हूँ भई।"

"शैतान, कलसे ही ..छि' छिः....छि'....छि'...."

छींकोंका प्रकोप शांत हुआ तब बिहारीने संबोधन किया—

"गिरी .."

"वह महाराजिन कलसे नहीं रह सकती। मैं कहती हूँ...."

"मेरी बात सुनती हो या .."

"सुनती हूँ, लेकिन तुमने ही . "

"हाँ, मैंने ही सृष्टि रची, और मैं ही बिगाड़—"

"तुमने ही यह महाराजिन रखवाई थी।"

"अब दोष नहीं होगा, तो। बस, अब तो स्वस्थ हुईं?—या अब..."

"स्वस्थकी बात नहीं, कोई न कोई गड़बड़ कर ही देती हैं।"

"अच्छा, अब इस अध्यायको खतम करो। प्रकोप पर्व समाप्त, नवीन पर्व आरम्भ। सुनो—"

सारी आकृति और चेष्टामें 'सुनाओ—' का भाव लेकर वह सुननेको हो गई।

"मैं वहाँसे आ गया हूँ। तुम्हारे लिए सोहाग-कोथली ले आया हूँ। लो।"

बिहारीने वह पोटली खोलकर गरिमाके आगे फैला दी।

"किसने दी?—उस. .?"

"हाँ उसने ही। जानती तो हो उस कट्टोको?"

गरिमा कट्टोको खूब जानती है। सत्यका रुख अब तक खूब समझती जा रही थी। जानती थी,—जड़में कट्टो ही है। यह जानते ही उसने उसे अपने प्रतिद्वंद्वीके रूपमें स्वीकार कर लिया था। बाबूजी और सब जोर लगा रहे हैं, तब भी वह रुख अनमनाया ही हुआ है—

यह देखकर इसने समझ लिया प्रतिद्वन्द्वी प्रबल है। तभी इसके षडण्यनने उठकर इस हलकी सी उठती हुई स्पर्द्धाको तीक्ष्ण धार दे डाली। 'वह गँवार छोकरी मेरा मुकाबला करेगी—मेरा ?' यह भाव उसे दिनरात सुलगाये रहने लगा। यह सुलगता हुआ भाव कभी महाराजिनके सिरपर फूटता था, कभी माँके, और कभी बाबूजीके। गरिमा सत्यको चाहती थी, इसमें सन्देह नहीं। वह युवती थी तिसपर पढ़ी लिखी। और सत्य भी शकलमें बिल्कुल अपरूप नहीं था। और अनिच्छा यौवनका स्वभाव नहीं है। लेकिन जब कट्टोका नाम सुना, और वह तकिया देखा, तब यह साधारण-सा खिंचाव एकदम ईर्षांकी धारकी तरह पैना हो उठा। तब यह सत्यको प्यार करनेपर लाचार हो गई और यह प्यार ही काटने और घायल करने लगा।

अब बिहारी पक्की खबर ले आया है, और कट्टोने दी हैं कुछ चीजें! इन सबको अपनी जीतकी भेंटके रूपमें उसने स्वीकार किया। कट्टो ...। कट गई होगी! देखो न, चली थी मुझसे बदने ?—आदि आदि चहकते विचारोंमें वास्तव संवादकी खुशी मानो खो गई है। सत्यसे विवाह होगा, यह बात तो जैसे उसके ध्यानमें है ही नहीं, मैं जीती हूँ, कट्टो आखिर हार गई है,—इसीकी नशीली खुशीमें खुश है।

"तो यह उसीने दीं ?"

"हाँ—"

"वह क्या यह जानती नहीं, मैं उस जैसी गँवारिन नहीं हूँ ?"

"वह कुछ नहीं जानती ...."

"मेरे लिए इनका उपयोग कुछ नहीं, सिवाय ... फेंक देनेके!...",

"हैं है, फेंकना नहीं, मेरी कसम।"

"य' कघा, 'य' शीशा, और ओ हो—यह कुंकुम!—छिः!—मैं क्या करूँगी इनका!—बड़ी सौगातें हैं न!"

"गिरी, ये सौगातें ही हैं। मेरी कसम जो इन्हे फेका तो।"

"ऐसे इनमे क्या लाल है? कितने पैसेकी होंगी ये सब?"

"गिरी, कट्टोने कुछ कह भी दिया है तुम्हें कहनेको .."

"क्या क्या, सुनूँ तो?"

"कहा है कि कहना, 'वह मेरी जीजी हैं। यहाँ आयेगी तो मैं उनसे अँग्रेजी पढ़ूँगी और टहल करूँगी' और ...और गिरी, तुम्हें वहाँ पहली रोटी उसके घर—उसके हाथकी खानी पड़ेगी। कट्टोने सत्यसे वायदा ले लिया है। और,—और उसने आशीर्वाद माँगा है।"

यह बात गरिमाके भीतर तक पहुँच गई। लेकिन जैसे भीतर उसको आश्रय नहीं मिला। गरिमा इस बातको कुछ समझ पाई नहीं और उसको लेकर यह उधेड़-बुनमें पड गई। इसके कहनेका क्या तात्पर्य है, कैसे वह कह सकी यह बात!—सो उसकी समझमें नहीं बैठता। उसने कहा—

"उसे मानों और कुछ कहनेको नहीं था?"

"गिरी, एक बात कहूँ?"

"कट्टोके बारेमें?—कहो, जो कहना चाहो।"

वह अब कट्टोको रोषका पात्र नहीं देखती। कभी उसके बारेमें सोचा था,—मानों उसपर अनुग्रह किया था। अब मानों उस अपेक्षित चिन्ताकी आवश्यकता शेष हो गई है। अब वह कृपाके साथ उससे सहयोग-सम्बन्ध स्थापित कर लेगी। अब काहेका खिचाव,—काहेका तनाव? मानो, जो पहले रोष किया, अब अनुग्रह दिखाकर उसका

सारा बदला चुका डालना चाहती है। इसी लिए आग्रहके साथ उसने कहा, "कहो जो कहना चाहो। न हो, तो कहो वह कैसी है। मैं उसे अब प्यार करूँगी।

"गिरी, वह सुन्दर नहीं है। पढी-लिखी ज्यादे नहीं है। हम वह बँध गये हैं, मैंने विवाह किया है।"

इसके लिये गरिमा तैयार नहीं थी। यह सौभाग्य क्या कट्टोके योग्य है? कट्टोको प्यार तो करेगी,—करती; पर यह एकदम इतना सौभाग्य! कट्टोने यह अपनी योग्यतासे कमाया नहीं है, निसंशय छलसे प्राप्त कर लिया है।—इतनी उसकी स्पर्द्धा! उसने कहा—

"ओह तुम्हें क्या हो जाता है, भैया। उसने जादू कर दिया है, चुडै....कहींकी!"

"हाँ, जादू किया है। वह जादूगरनी है। मैंने ही उसके जादूसे सत्यकी रक्षा की है। पर रक्षा रक्षामें खुद फँस बैठा।"

"यह क्या पागलपन है .?" गरिमा बोली।

"क्या पागलपन है!...." कहते कहते बाबूजीने प्रवेश किया। अब तक बिहारी लौटा ही नहीं, यह कैसी बात है? आखिर उकताकर बाबूजी खुद ऊपर चढ आये हैं। गरिमाकी तरफ देखकर कहा—

" . . यह पागलपन क्या....?

"बाबूजी, बिहारीने ब्याह कर लिया है। वह कट्टो...."

बाबूजी चौंके, "क्या?"

"वह कट्टो लड़की, आपने सुना होगा .."

बाबूजीके मुँहसे निकला—"बिहारी?"

बिहारीने अविचलित अकम्प स्वरमें कहा—"जी।"

बाबूजी क्षणेक गुम रहे। फिर क्या हो गया?—बोले—

"बहूको कब लाओगे घरमें ?"

"बाबूजी, वह घर नहीं आयेगी, वहीं रहेगी।"

"क्या ?" जोरसे झटककर बाबूजीने कहा।

"वह वहीं रहना चाहती है।"

"और तू ?"

"अभी तो इम्तहान देकर घूमने जाऊँगा। आप फिकर न करें, फेल अब कभी न हूँगा। घूमनेमें दो साल लग जायँ,—शायद ज्यादे भी। लौटकर आपसे परामर्शके बाद, देखूँगा, क्या करूँगा।"

"और बहू ?—नहीं, वह यहाँ रहेगी। मेरी बहू वहाँ रहेगी, वैसी रहेगी. और यह रुपया यों भरा भरा सड़ेगा ? नहीं, वह यहाँ रहेगी, बिहारी।"

"बुला भेजिएगा। आये, तो आ जायगी।"

"मैं पहेली सुलझाना नही चाहता।—कैसा यह ब्याह है तेरा ?"

"हमारा ब्याह हुआ है इसीलिए कि हम दूसरा ब्याह न करेंगे। साथ रहे रहे, न रहे न रहे,—कुछ बात नहीं। क्योंकि हम हमेशा साथ हैं।"

"यह पागलपन खतम करो। जाना हो जाओ। पर यह पागलपन मैं नहीं सुनना चाहता। मैं तुम्हे किसी बातसे नहीं रोकूँगा पर ऐसी दुनियासे परेकी बात मेरे सामने न किया करो।"

तब बाबूजीने घरके आँगनमें जाकर बिहारीकी माँसे पुकारकर कहा—

"सुना कुछ ? बिहारीने ब्याह कर लिया है। बहू वहीं गाँवमे रहेगी,—बिहारी लापता होगा। ऐसी बात तुमने सुनी है कभी ?"

"ब्याह हो गया—किसीको पता भी नहीं ! और बहू वहाँ, और

यह यहाँ भी नहीं वहाँ भी नहीं !—यह कैसा किस्सा कह रहे हो तुम ?"

"कैसा है, सो विहारीको ही बुलाकर पूछ लेना।"

कहकर बाबूजी बैठकमें जाकर आजके अखबारमेंसे दुनियाकी असारता खोजने लगे। गरिमाकी बात, हठात्, भूल ही गये।

२९

ब्याह हो गया है। बड़े घरकी बेटी,—खूब अँग्रेजी-पढ़ी बहू गाँव आई है। दुनियाका आठवाँ आश्चर्य उठकर मानों गाँव आ गया है।

पर ठहरो, नई-नवेली बहूको देखनेकी उतावली न करो। औरतोंकी भीड़ उसे घेरे है उसे छूट जाने दो, और कट्टोको जरा छुट्टी पा लेने दो। उसके साथ साथ अकेलेमें चलेंगे।

इधर कट्टोकी जान-पहचान नई बना लें। वह अब ऐसी ही पेड-वाली बन गई है। कुछ आया था जिसके कारण वह लहँगा-ओढ़ना पहनकर कौनेमें दुबकी सिमटी बैठे रहनेकी बात सोचने लगी थी, लेकिन वह चला गया,—चलो अच्छा ही हुआ,—और फिर वह वैसी ही भागने-उछलने, चहचहाने लगी है।

जीजी कबकी आई है,—पर उसे फुर्सत नहीं निकल रही है ! बात यह है कि वह इतनी जनियोंके बीचमें जायगी तो चुपचाप बैठे रहना पड़ेगा—और, यह उससे न होगा। वह तो जीजीसे मचलना चाहती है, अभी कुछ जीजीसे उलझे बिना उससे कैसे रहा जायगा ? बाल भी तो उनके काढूँगी, उनकी चीजें भी देखूँगी,—सब उनकी किताबें भी गहने भी। इसीसे वह कुछ न कुछ धरा-सँभाल किये ही जा रही है।—पर ये औरतें भी कैसी हैं, जमके ही बैठ गई है, टलती ही नहीं !

अब कहो भीतर ही भीतर कुलबुलाते कुलबुलाते तंग हो गई है। बैठी हैं तो बैठी रहो,—यह तो अब जायगी ही।

लो, तैयार हो जाओ।

प्रौढा और नवीना, मुखरा और मौना, उज्ज्वला अपि तु श्यामल-गाता आदि विविध बखानकी स्त्रियाँ विभिन्न वर्णों और वर्णनोंके साज और सिंगार पहने, अचरजसे थोड़ा सम्मान-सम्भ्रम-पूर्ण अंतर छोड़े, 'एक'को चारों तरफसे घेरे बैठी हैं। वह एक वहू बनकर आई हुई गरिमा है। देखो तो, कैसा ओढ़ना ओढ़े बैठी है और लहँगा सिमटाकर ऐसा कर लिया है कि दीखे ही नहीं। मानों इसे और कुछ पहनना आता ही नहीं, सदा यही पहिना की है, और सदा मानों यही कपड़े पहिने, यों ही बैठी रही है। गहने एक एक अंगपर झलमल झलमल कर रहे हैं। आँखें सामने किसी अज्ञात बिन्दुके भीतर घुसनेका प्रयास कर रही हैं, थक जाती हैं तो बायें हाथमें कगनकी एक उठी हुई नोकपर आ ठहरती हैं। वहू इस तरह इतनी दृष्टियोंसे जकड़ी हुई बैठे बैठे थक गई है, चाहती है इनकी नजरें कुछ ढीली हों, कुछ बातचीत हो, जिससे उसके चारों ओर फैला हुआ यह विशिष्टताका परिवेष्टन टूटे और उसे आदमीकी तरह कुछ करने धरनेका अवकाश मिले। पर ये सब आपसमें बोल सकती हैं, उससे नहीं बोल सकतीं,—न जाने यह कहीं अँग्रेजी बोल पड़े!—वे तो बस इसे देख सकती हैं।

वहू उठ सकती नहीं, और अब बैठी भी रह सकती नहीं। वह बड़ी व्यथा पा रही है। कितनी बार उस बिन्दुसे हटकर कगनेपर और कगनेसे उस बिन्दुपर लौट लौट जाकर उसकी दृष्टि थक चुकी है। तभी सुनाई दिया—

"जीजी!"

उठ पड़ी। देखा, जरूर वही है। अनायास कह उठी 'कट्टो!" अनायास वह खिल गई; अनायास हाथ फैल गये,—मानों स्वागतके लिए; एकदम, सब कुछ वह गया, अनायास इस कट्टोको बैठानेके लिए मानों हृदय किवाड़ खोलकर सन्मान-सहित खड़ा हो गया।

कट्टो दौड़ी आई, उस आलिंगनमें बँध गई।

"जीजी!"

"कट्टो!"

जैसे दो सरिताएँ मिल गईं, दो लताएँ मिल गईं, दो कोमलताएँ मिल गईं।

स्त्रियोंने देखा कि यह क्या? कट्टो बाहर कभी नहीं गई, वहू यहाँ पहली बार आई है, फिर यह क्या!

वे क्या जाने कि दोनोके हृदय,—एक ओरसे चाहे स्पर्धा और से हो, और दूसरी ओरसे श्रद्धा और अर्चनासे बहुत पहलेसे एक-दूसरेसे परिचित हैं। और वे क्या जानें स्पर्द्धा और श्रद्धा, और ईर्ष्या और अर्चना एक ही भावनाके ओर और छोर हैं, ऋण और धन दो सिरे हैं। उन दोनों सिरोंके बीचमें रहने और बहनेवाला तत्त्व है आकर्षण।

३०

दोनों अकेली हैं।

"जीजी, मेरी बात उन्होंने कही थी?"

"कही थी। ब्याहकी भी कही थी।"

"वह तो हँसी बहुत करते हैं। हमेशा हँसी!—यह कोई ठीक बात है?"

"अच्छा, उनकी ठीक बात नहीं है। फिर तू ही बता ठीक बात।"

"जीजी, कुछ नहीं। भला, ब्याह कैसा? जीजी, जानती नहीं तुम, मैं तो विधवा हूँ। विधवाओंका ब्याह होता है?—छिः।"

"तुम तो एकदम ब्याहपर जैसे लानत भेजती हो!—फिर क्या बात है?"

"कुछ बात भी हो जीजी!—बिहारी बाबू तो यों ही ..."

"देख, कट्टो, छिपेगी तो ठीक नहीं। मैं फिर तेरी कुछ भी न हुई? मैं तेरी जीजी नहीं हूँ, भला? और जीजीसे तू अपनी बात न कहेगी?"

"हमने प्रतिज्ञा की है, वह कुँआरे रहेंगे, मैं ऐसी ही रहूँगी। और हम दोनों अपनी बात नहीं सोचेंगे, दूसरोंकी सोचेंगे। मुझे तो सोचनेके लिए तुम हो, और तुम्हारे 'वे' हैं जीजी, उन्होंने तो मुझे पढ़ाया है। मै भला क्या जानती थी, और वह न होते तो आज क्या मैं तुम्हे जान पाती? बिहारी बाबूसे भी अपने आपमे ही सुखी नहीं रहा जाता। बिहारी बाबू तो दुनियामें बिहारके लिए ही बने हैं। वह क्या एकके होने लायक हैं,—सबके हैं। मैंने यही देखकर उनके साथ प्रतिज्ञा बाँध ली। बस, यही बात है जीजी,—इसे बिहारी बाबू ब्याह कह लें या कुछ भी कह लें।"

"यह अद्भुत बात तुझे कैसे सूझी कट्टो?"

"अद्भुत क्या है जीजी इसमें? बिहारी बाबूको देखकर मुझे ऐसा लगा कि उनकी आत्मा किसी एकका सहारा पाकर कल्याण-रूप होकर व्याप्त हो जाना चाहती है और वह उस 'एक'को खोजते फिर रहे हैं। मैंने अपनेसे पूछा, 'क्या मैं वह 'एक' हो सकती हूँ' मनने कहा, 'क्यों नहीं? जीजी, सो यह बात हिम्मत करके मैंने कह डाली...."

"तुमने यह आत्मा पढना कहाँ सीखा ? देखती हूँ, तुम तो बड़ी होशियार हो।"

"जीजी, तुम तो ठट्ठा करती हो। आत्मा क्या कोई सबकी पढी जाती है ? और क्या सीखा जाता है ? बिहारी बाबू तो मुझे ऐसे दीखे जैसे छापेके अक्षर, कोई साफ साफ एक एक पढ ले।"

"तो फिर यह ब्याह कैसे हुआ ? वह तो कहते थे, ब्याह हुआ है और तुमने उनपर जादू फेरा है।"

"जीजी, वह तो बात ऐसी ही ठट्ठेसे कहा करते हैं। हम कब चाहते हैं, लोग उसे ब्याह समझें। हाँ, इतना है कि मैं उनके और वह मेरे जीवनसे मिल गये हैं।—हम बँध जो चुके हैं एक ही प्रतिज्ञामें। उनसे मेरा और मुझसे उनका जीवन बनेगा और पूर्ण होगा। उनकी वजहसे मैं इकली भी अकेली न हूँगी, और हम एक दूसरेके होकर होनेकी राह पा लेंगे। मैं उनके लिए मर जाऊँगी, ऐसे ही वह लिए मिट जायेंगे।.. पर जीजी, तुम मुझे ऐसे देख रही हो मैं बिल्कुल पगली हूँ। बिल्कुल पगली थोड़े ही हूँ, हाँ तुम्हारे जितना तो नहीं जानती। सो क्या उस बातपर तुम मुझे यों देखोगी ? न न, मुझपर तुम बिगड़ नहीं पाओगी।... अच्छा, चलो अब जीजी, घर चलो हमारे। तुम रोटी तो बनाना क्या जानती होगी, क्या काम पडता होगा वहाँ तुम्हे ऐसा। बैठी रहना, बताती जाना, मैं बनाती रहूँगी। तुमसे कहा न होगा उन्होंने आज तो तुम्हें मेरे ही यहाँ खाना खाना पड़ेगा। हॉ...और भी तो बात है,—आशीर्वादकी आशीर्वाद दिया तुमने ?—अब यहाँ देना पड़ेगा।—पहले दे दोगी, तब रोटी मिलेगी।"

यह कट्टो ऐसी बात करती है कि कहींसे बचनेकी राह ही नहीं

छोडती। सवाल भी करती है, और जवाब भी अपने ही आप दे देती है, जिससे 'नहीं' करनेका मौका नहीं रहता। गरिमा इसकी यही बात देख देखकर अचरज कर रही है। गरिमासे जो चाहे करवा लेती है, और हर बातमें अपनी ही चलाती है,—पर ऐसे ढंगसे कि कुछ कहते नहीं बनता, बिल्कुल अखरता ही नहीं।

यह आशीर्वाद देना-दिवाना तो किसी शिष्टताके 'कोड' में उसने सीखा नहीं। न वह आशीर्वाद देनेको अत्यन्त उत्सुक है। पर—

"जीजी, चुप क्यों हो? देखो, ऐसे। मैं बैठती हूँ घुटनेके बल, फिर पैरोंमें पड़ूँगी, तुम मेरे सिरपर हाथ रख दोगी,—प्रेमसे जसे माँ हो। फिर मै उठ जाऊँगी, और मुझे गले लगा लेना। पर देखो, असली मनसे करना, नहीं तो मुझे फिर कसरत करनी पड़ेगी। जबतक ठीक नहीं होगा, तबतक छुट्टी नहीं दूँगी।"

कट्टो बात तो बहुत बडी करती है, पर बोलती बिल्कुल बच्ची-सी है। गरिमाने अपने लिए 'माँ' सुना, और उसका हृदय न जाने एक कैसे रससे भीना हो गया। अब तो सचमुच इस लडकीको वह कठसे लगा लेना चाहती है। इस लड़कीसे तनकर रहा नहीं जायगा,—वक्त बक्तपर बहुत पण्डिताईकी बात कर जाती है तो क्या? उसके भीतर जो प्रसुप्त मातृत्व है, इस लडकीने अपने लड़कपनकी मीठी बोलीसे छेडकर उसे चंचल कर दिया है। तानसेनने अपने कण्ठके दर्दसे पत्थरोंको पिघला दिया, आर्त्तोंकी पुकारने न्यायकठिन परमात्माको पिघला दिया,—तब कट्टोकी हठ-मचलने शिक्षा-कठिन गरिमाको पिघला दिया तो इतनी बडी बात क्या हुई?—मातृत्वके गौरव और स्नेहसे कोमल गरिमाने कहा—"कट्टो, म .."

लेकिन तबतक तो वह घुटनेके बल बैठ गई थी। उसने माथा पैरोंमें लगाया,—पैर खींच लिये और गरिमा पानी पानी हो वह चली।

स्नेहार्द्र-कंपित वाणीसे गरिमाने कहा—

"हे हे, कट्टो,...."

पर कण्ठ बहुत भर रहा था,—हाथसे सिरको थपका और फिर दोनों हाथोंसे उठाकर आलिंगनमें बाँध लिया।

छूटते ही कट्टोने कहा—

"मेरी अच्छी जीजी, कैसी भली हो! जीजी, चलो, मेरे घर नहीं चलोगी?"

गरिमा बहुत बहुत बार नहीं रोई है। पर यह रोना तो बड़ा सुखप्रद मालूम हुआ। वह इससे हरी हो गई, जैसे बारिशसे झरी-धुली नई क्यारी हो।

"कट्टो, तू मेरे पास नहीं रह सकेगी? मेरे साथ घर चली चलो तो बड़ा अच्छा हो। ऐसी ही कट्टो बनकर रहना, सब तुझे प्यार करेंगे। तुझे कोई प्यार न करेगा तो किसे करेगा?"

"मैं साथ चलूँगी! कैसी अनिष्ट बात कहती हो जीजी? इस गाँवको छोड़कर और कहीं रहूँगी तो डालसे टूटे फूलकी तरह ज्यादे न रहूँगी। और यहाँ तुम्हारे घरमें मेरे जैसी गँवारिन क्या भली लगेगी? जीजी, मेरी तो यही जगह है,—यही अम्माका जामन-वाला घर। पर यह ऐसी बात क्या कह दी? क्या उन्होंने कहा था?"

कट्टो, इस स्थलपर क्यों छूती हो? वह अभी अभी फूटकर बह चुका है, अभी तो दर्द देता है। पर मातृत्वकी इस हिलोरमें गरिमा इस हल्केसे दर्दको बेपीर झेल गई। बोली—

" उन्होंने तो नहीं कहा। वह क्यों कहते ? पर कहो, तो कह देखूँ ? "

" नहीं नहीं नहीं .. "

" अब तो ज़रूर कहूँगी, डरती क्यों हो ? "

" उन्होंने ' हाँ ' कर भी दी तब भी मैं नही जाऊँगी।"

" तब तो तू आप जायगी।" एकदम 'तू' से उसने ऐसी गहरी बात कह डाली।

कुछ देर और बात हुई। पर ऐसी सब बातें हम नहीं बता सकते। ऐसी जगह ज्यादे खोद बीनकी जिज्ञासा भले आदमी नही किया करते। इससे मन मनमें जो चाहे समझ लीजिए, पर जोरसे कहिए मत और पूछिए मत।

उसके बाद कट्टोने अपनी जीजीसे अनुरोध किया—

" घर चलो। रोटी मैं बनाऊँगी, तुम देखती रहना, बताती रहना।"

सो तो नहीं होगा। गरिमा क्या चुप बैठी रहेगी ? वह भी जरूर बनायगी। बनायगी नहीं तो मदद तो खूब ही ज़ोर शोरसे देगी। लेकिन—

" लेकिन, मैं अभी आती हूँ—मेरी क़सम। तू चल इतने....। मैं.... मैं जरा ..."

बस बस बस, कट्टोसे ज्यादे मत कहो। वह समझ गई है। वह चली जाती है, अभी भागी जा रही है। खूब बाते करो, तुम दोनोंके बीचमें अब वह कौन है ?

अब उसे एकदम अकेले भाग जानेकी बड़ी झटपट पड गई।—पर बातोंमें जीजी आना भूल न जायँ! बाते ही ठहरीं,—क्या अचरज है! इससे चलते चलते याद दिला गई—

"देखो, आना। कहीं...! तुम्हे मेरी . ."

"हाँ जरूर, जरूर, जरूर।"

कहती रहो कितनी ही 'जरूर,' कट्टो तो यह गई, वह गई! छोड़ गई है तुम्हे कि अब खुलकर बातें कर लो—लेकिन झटपट उसके यहाँ भी जाना है।

नई बहूने (अब तक भी टोहमें लगी हुई, सबसे नये मिनटकी और ज्यादसे ज्यादे मिर्चवाली कोई खरी-खोटी सुनने और सुनानेके लिए सदा घात देखनेवाली प्रौढाओंकी रायमें बड़ी बेहयाईके साथ) अपने नये वरको खोज निकाला—

"जी, यह कट्टो मेरे साथ चली जाय तो कैसा?"

क्या?—कट्टो? फिर कट्टो?—मानों कुछ गलत सुना गया है, इसलिए प्रश्न सूचक दृष्टिसे देखा।

"... ..."

"क्यों, सुना नहीं? या कट्टोको जानते नहीं?"

"क्या? कट्टो—? तब?"

"वह मेरे साथ दिल्ली जाय तो कैसा?"

"नहीं।" झटकेसे पूरा जोर निर्णयमें फेंककर कहा।

"नहीं?"

"हाँ नहीं। जहर रखना चाहो पास, रक्खो। पर मैं नहीं कहूँगा, मैं नहीं रक्खूँगा। कभी मरनेका लालच आ जाय तो खानेको पास ही तैयार रहे! नहीं, कट्टोको तुम्हारे साथ या अपने साथ कभी रखनेको नहीं कहूँगा। समझीं?"

समझी भी और नहीं भी समझी। लेकिन इस बारेमें और ज्यादे कुछ बढ़ना ठीक नहीं समझा।

फिर बादमें बहुत ही नियमित, दोनों ओरसे पाबन्द, और अत्यन्त उचित रूपमें थोडा-सा परस्पर प्रेम-परिवर्तन हुआ। (नहीं, आप नहीं सुन पायेंगे,—धीरज न खोयें और मुँह न बनायें।) जब पाबन्दी, शिष्टता और औचित्यकी परिधि आ गई, तब विवाहके बादके प्रथम दिनका प्रेमालाप रोक रखना पडा और गरिमा कट्टोके घरके लिए चल दी।

३१

साग तो अब हुआ जाता है। रायता हो ही गया है, सब कुछ हो गया है, बस अब पूरी उतारनी ... हैं! यह चून तो अभी निकला ही नहीं है, पराँत तो यूँ ही पड़ी है! उसनेगा, तब कहीं... ...इतने कढाई जल .यह सब सोचकर, साग-सनी कर्छीको झटसे छोड, हडबडाई उठ खडी हो गई। देखो न, यह जीजीके झंझटमें आटा रह ही गया—पर लो, अब सब हुआ जाता है। वह चलानेको हुई ही कि—

"क्यों क्यों?—क्या हुआ?"

कट्टोने हँसते-हँसते बताया—

"सब हुआ, आटा तो निकाला हीं नहीं। ब्याहके सामान तो हो गये, दूल्हा कहाँ है!"

"लो मैं लाई।"

"नहीं नहीं...."

"कहाँ है?"

"वह रहा मटकेमें।"

गरिमा पराँत लेकर आटा लेने गई। कट्टो अपने सागमें लग गई। साग चलाते चलाते—देखा कि यह क्या?

" जीजी चून खिंडा दिया ! "

"—उठाये देती हूँ।"

" हैं हैं, धरतीका चून !"

उठानेको हो ही रही थी कि वहीं छोड़ दिया। फिर कटोका ख्याल गया—

" जीजी, इतना चून नहीं, थोड़ा।"

एक एक मुट्ठी डालती जाती और पूछती जाती 'इतना ?' आखिर घटते घटते ठीक परिमाणमें आया ही, डरते डरते कितनी मुट्ठी कम की गई; पता नहीं।

जीजी जब चलनेको हुई कि पता चला उसकी आस्मानी रंगकी बेलदार साड़ीका सामनेका हिस्सा सफेद हो गया है, और कोहनी तक हाथ भी मानों भूरे पाउडरसे सफेद कर लिये गये हैं।

" जीजी, यह क्या कर रही हो ? आज सबको हँसानेकी ठानी है या यह हाथका और साड़ीका रंग नहीं भाता ?"

" बोल बोल, और क्या करूँ ?"

" करो यह कि बैठो; और मुझे हुक्म दो। सबके अलग अलग काम होते हैं। कोई किसीका करे तो बडी गडबड हो जाय। तुम्हे तो तुम्हारा काम ही सोभता है। चून-दालका और बासन-भाँडोंका काम तो तुम्हारा है नहीं जीजी। मेरा है, मुझे करने दो। और तुम्हारा जो देखनेका, बतानेका, करवानेका है, सो तुम करो।"

" नहीं-री....मैं अच्छी लोई बनाती हूँ, पूरीकी।...."

रोज़ रोज़की बात तो कहती नहीं। रोज तो उससे हो भी नहीं सकेगा। लेकिन आज तो बगैर काम किये वह नहीं मानेगी। जरूर कुछ पूरियाँ,—और अपनी साड़ी और अपने हाथ खराब करेगी,—चाहे

पसीना आये, आँखोंमें पानी आये, घी उछलकर हाथ जला दे, और चाहे कट्टोको कितनी ही अड़चन पैदा हो। कट्टोका कहाँ भाग कि ऐसी अड़चन पैदा करनेवाली उसके यहाँ आई है। वह मदद करनेके नामपर सिर्फ काम बढ़ा रही है और कट्टोको अपने खानेके सामानहीकी नहीं, इस गरिमाकी भी फिक्र करनी पड़ रही है—पर चाहती है, रोज रोज ऐसा हो। कोई मिले तो उसे प्यार करनेवाला, वह उसे सिंहासन पर बैठाकर चौबीसों घण्टे उसकी चाकरी बजायेगी और इतने पर कृतार्थ होगी। आज वह कितनी खुश है, इसको बहुत कम लोग समझ सकते है।

इसी तरह खाना आखिर बन गया है। कट्टोकी अम्मा भी आ गई है। बहूकी लोरियाँ वह ले चुकी है। कैसी महारानी बहू है। बड़-भागिनी हो, पूतोंसे सुखी रहे, राज करे, आदि अपनी मातृहृदयकी उछाह रससे भरी असीसें वह उसपर बरसा चुकी है,—कुछ हर्षके आँसू भी।

वही माँ इस नौसिखुए हाथोंकी बेढब कार्रवाईको देखकर बड़ी खुशी हो रही है।

तब सत्यको बुलाकर जिमाया गया। गरिमाकी साड़ी कानके आगे तक खींच ली गई है। पर वह ज्यादा बोल नहीं रही है। सत्य भी ज्यादा बोला नहीं। माँने जो बात छेड़ी तो सत्यने उखड़ी 'हाँ हूँ' से उसका स्वागत किया, उससे बात करनेका माँका उत्साह भी भग हो गया है। कट्टो तो मानों अपनी कढ़ाहीकी सम्हालमे एकदम व्यस्त है। उसे तो सत्यकी ओर आँख उठानेकी भी छुट्टी नहीं मिल रही है। और यह कौन कह सकता है कि वह इस प्रकारकी छुट्टी नहीं चाहती। उसका मुँह मानों कामकी भीड़ने सी रक्खा है। उससे इसलिए, एक भी

शब्द नहीं निकला है। हाँ, काम वेधड़क चल रहा है। न सिर उघड़े-बेउघड़ेकी पर्वाह है, न यह कि हाथ यहाँ तक खुले हैं, और न इस बातकी ही कि थालीमें पूरी ठीक जगह पड़ती है या नहीं, क्योंकि अक्सर ठीक उसी समय कढ़ाईके घीमें कुछ खास काम निकल आता है, और आँखें उस घीकी ओर ही रखनी पड़ती हैं।

वृत्तानके अध्यायका यह पृष्ठ, या कहे यह पैराग्राफ, इन सब जमी हुई चुप्पियोंके कारण, इतना नीरस हो गया है कि हम उसे पाठकोंके सामने नहीं रखना चाहते। इसलिए—

"जीजी बैठो न।"

"तुम भी तो बैठो।"

"मैं पीछे खाऊँगी। निपटाना भी तो है।"

"निपटा लो तो फिर। मैं भी पीछे ही खाऊँगी।"

"नहीं जीजी, यह कोई बात है? तुम तो मेहमान हो, जीजी हो।"

"अच्छी जीजी हूँ, और अच्छी मेहमान हूँ,—इतना तो काम लिया कि—

"नहीं नहीं, मैंने तो यह परोस भी दी थाली—"

"परोस दी तो रक्खी रहने दो। ठंडी काटेगी तो है नहीं।"

कट्टो हार गई। और यह हारना कैसा अच्छा लगता है! कट्टोने कहा—

"अच्छा तो लो, मैं भी अब निबटी। तुम्हें देर तक भूखी नहीं रक्खूँगी। पर तुमने फैलानेमें मदद दी तो अब निबटानेमें भी तो ..."

"बोलो, बोलो—"

तब मिलकर उठा-धराई की गई। कट्टोने आधा काम किया; आधा बताया कि ऐसे करो। इससे काममें कुछ शीघ्रता हुई हो बात सो नहीं,

नर वह देर किसीको मालूम नहीं हुई,—और ऐसा लगा जैसे काम सचमुच जल्दी हो गया।

तब खाना हुआ दोनों सहेलियोंका। उपहार-मनुहार, छीन-झपट, गुदगुदाहट और जबरदस्ती आदि आदि बहुतसे व्यजन भी थालीके व्यजनोंमें मिल गये। और इनके कारण भोजन बहुत स्वादिष्ट हो गया। वे कट्टोने बनाये थे, इनके बनानेमें ज्यादे श्रेय गरिमाका था। शहर दिल्लीमें वह नियमकी विधि-निषेधकी रेखाओसे घिरकर कई कोणोंकी ऐसी ज्यामितिकी पिण्ड बन गई थी जो हिल-हिला नहीं सकती। यहाँ,—कट्टोके यहाँ आकर वह रेखाएँ हट गईं। तब जो कुछ दबा हुआ, घुटा हुआ और घिरा हुआ था, वह तनिक तीखे वेगसे उमड पडा। इसलिए इस एक थालीमें खाते वक्त उसने कट्टोके साथ ऐसा दंगा मचाया कि क्या कोई मचा सके।

सहेलियोंका यह काम हम नहीं देखेंगे, क्योंकि क्या ठीक, इस ऊधम दंगेमें धोती कहाँ बहक जाय, पल्ला कहाँ हो जाय, और हाथ न जाने कहाँ कहाँ पडें। इसलिए अगर सभ्य हो तो आँख मीचकर लौट पड़ो। कहीं पता चल जाय और आयदा वैसा ऊधम ही बन्द हो जाय,—तब तो दुनियाकी भारी क्षति होगी,—हम सच कहते हैं।

३२

लेकिन दिन एक-से नहीं रहते। काल चला जाता है और चीजोंको नई पुरानी कर जाता है। नईका काम है पुरानी हो जाय, पुरानीका काम है मर जाय। यह मरी, फिर शायद किसी विशेष पद्धतिसे नई हो जाती है। वह विशेष विधि क्या है, सो हम क्या जानें। जिसे विद्वानोंने खोजा, मर गये पर नहीं पा गये, खोज रहे हैं, मर रहे हैं, पर नहीं पा

रहे हैं,—उसीको हम क्या जाने! हमसे बहुत ज्यादे मेहनत नहीं होती, इस खोजने खोजनेमें ही और पानेके लालचमें खोने खोनेमें ही हमसे जिन्दगी नहीं बितायी जायगी। हमने तो एक शब्दमें कह दिया 'परमात्मा,' और मानों हमने पा लिया। हमारी छोटी-सी गर्ज तो पूरी हो गई। पर लोग है, खोजनेसे थकना ही नहीं चाहते। कहते हैं, हम पाकर ही छोड़ेंगे। हम उनको धन्यवाद देते है, हाथ जोडते हैं, बड़ी श्रद्धासे 'नास्तिक' कहते हैं, पर कहते हैं, 'भाई, खूब खोजो, जितना बने उतना। पर बिदासे एक दिन पहले समाधान नहीं मिल पाये तो हमारे साथ हो जाना और कहना 'परमात्मा' मिल गया तो हम इसका जिम्मा लेते हैं कि जितने कोष मिलेंगे हम जबरदस्ती उनमेंसे 'परमात्मा' मिटा डालेंगे।

पर हम बहक गये। कट्टो और गरिमा और हमारे वृत्तातका परमात्मासे कोई विशेष निजी सम्बन्ध नहीं है। सिर्फ नये-पुरानेकी बात थी। सो बात यह है कि गाँवका स्वाद पुराना हो गया है, कट्टोसे मन अब नहीं खिचता, पहले-जैसा नहीं मिलता और नहीं बहलता। अब अखबारोंकी जरूरत अनुभव हो रही है,—किताबें भी तो नहीं हैं! उनसे अच्छी बोलती है, बहुत तनकर भी नहीं रहती, पर ये गॉवकी औरते,—ऊँह उनसे दिल नहीं मिलाया जा सकता, ठीक बोलतीं नहीं, ठीक बैठतीं नहीं, ठीक बात भी नहीं समझती।—बोलो, बात भी तो नहीं समझती! फिर कैसे दो मिनट उनसे चर्चाको जी चाहे? वहाँ दिल्लीमे लता थी, जाह्नवी थी, कभी घर आ जाती थीं, होता तो वहीं चली जाती थी,—उनसे बात तो होती थी दुनियाकी और कुछ अक्लकी, यहाँ तो वह बात नहीं। दुनियाकी कुछ खबर नहीं रहती,—एक ही बेधा रोटी-चूल्हा और पति। आपसकी 'तू और मैं'! वहाँ बाग थे, जी चाहा जब साफ हवा ले ली,—यहाँ हवा भी

गन्दगीमेंसे छनकर आती है, गाँवके चारों तरफ जहाँ-देखो घूरा, उसकी हवा,—क्या, वह कार्बन, कार्बन आक्...खैर, कुछ तन्दुरुस्तीको खराब कर देगी। मैं, देखो, कैसी सूखी-सी...."

सारांश यह कि जब नई बात पुरानी बूढी हो गई तो ये दोष सब उसके ऊपर सिकुड़नकी तरह, गिन-लो ऐसे, फैल गये।

तब एक दिन एक चिट्ठी भी बाबूजीकी आ गई।

—"सत्य, गाँवमें तो काफी दिन हो गये। अब चाहो तो यहाँ आ जाओ। गिरीका मन पूरी तरह न लगा हो, तो तुम जानते ही हो, अचरजकी बात नहीं। वह ऐसी जगह रही नहीं। मुझे कुछ और नहीं, यही खयाल है कि कहीं स्वास्थ्यपर असर न पड़ जाय। स्वास्थ्य पहले, सब कुछ बादमें। लिखो, कब आ रहे हो, ताकि गाड़ी भेज दी जाय। जल्दी ही आ जाओ। गरिमा अच्छी होगी। प्यार कह दो, कहो, मुझे चिट्ठी लिखना एकदम भूल न जाय। और सब अच्छे हैं।

पुनः

तुम्हारा—

चाहो तो आनेका तार दे देना—।

भगवद्दयाल

तब तक सत्य घर जानेके काफी पक्षमें हो गया था। गरिमाके स्वास्थ्यकी ओरसे निश्चिन्त वह नहीं रहना चाहता। गरिमाने बताया: है, गर्मी है, हवाकी तब्दीली चाहिए, यहाँका पानी ठीक नहीं, जी मिचलाया-सा अनमना-सा रहता है। Aloofness की (एकाकी) ज़िंदगी बितानी पड़ती है, सोसायटीका अभाव है, दिमागको खुराक और ताजगी नहीं मिलती,—शायद इसीसे ऐसा है। गरिमाने यह भी कहा था, "पर मुझे कुछ नहीं। तुम जहाँ अच्छे, मैं भी वहाँ ही अच्छी। तुम्हे गाँव माफिक है तो ठीक है, मेरा क्या?"

यह अन्तका उलटा लगनेवाला तर्क ज्यादेतर तुरन्त सिद्धि दिलवा देता है। यह बहुत कम चूकता है, और मर्मपर इस प्रकार बैठता है कि सौमें निन्यावने हिस्से सिद्धि हुई ही रक्खी समझो। अश्रु-सिंचन-तर्ककी यह सूक्ष्म और हल्की पर्याय है, पर गला देने, पिघला देने और कहींका न छोड़नेमें उससे कहीं कारगर। सोचने तो थे ही जानेकी, इस चिट्ठीने मानों दर्वाजा खोल दिया, कहा, "आओ, आ जाओ।"

फिर चलनेके साज-सामान होने लगे पुलिन्दों और ट्रंकोंकी सँभाल और बाँध। नयी बहू जा रही है, यह खबर कुसलोंने इससे, और उसने दूसरे उससे और फिर तीसरे और चौथे .. इस प्रकार 'इस उस' के परोंपर चढ़कर गाँव-भरका चक्कर लगा आई। इसी चक्करमें मिली वह कट्टोको।

"जीजी जा रही हैं। वह भी जा रहे हैं।"

वह कई दिनोंसे नहीं गई तो क्या, और जीजी नहीं बोलतीं तो क्या, अब जाये बगैर उससे नहीं रहा जायगा।

पहुँची।—बहुत-सा सामान उठाना-धरना है। कपड़े-लत्ते कुछ मैले हैं, सो अलग पोटलीमें बँधेंगे। और ये धोबीके यहाँसे नये मँगाये हैं,—सबके सब ट्रंकोंमें चिने जायँगे। यह भी ख्याल रक्खा जायगा कि कौन किसमें।—यह सब काम देखकर कट्टो चुप इन्तजार करने लगी है, जीजी वक्त पाये, देखे, तब बोलें। जो वह मैली धोती वहाँ लटक रही है, उसे देखनेमें भी अचानक ही यह कट्टो दीख गई है। पर अभी तो और भी बहुत-से कपड़े हैं। निगाह उठानेकी कब फुर्सत मिलेगी—कुछ ठिकाना तो नहीं।

गरिमाके मनकी पूछते हो? वह अपनेको मन ही मन दोषी समझ

रही है। देखकर भी नहीं देख रही है,—सो भी अनुभव कर रही है कि दोष हो रहा है। पर दोषको मिटानेकी चेष्टा उसके जैसे स्वभाव-वालीको कठिन हो रही है। इसलिए, वह अपने मनको भुलानेके लिए, कि जैसे मन मान ले सचमुच कट्टो दीखी ही नहीं, धोबीके कपड़ोंके ढेरमेंसे अत्यधिक व्यस्तता प्राप्त कर लेना चाहती है।

आखिर, कट्टोने कहा, "जीजी !..."

अब तो यह व्यर्थ भुलानेकी कोशिश, यह अभिनय, समाप्त करना ही पडेगा।

"कट्टो !..."

"जीजी, जा रही हो ?"

"हाँ।"

"आओगी ?—कब आओगी ?"

"सो तो वह जानें।"

"नहीं आओगी ?"

"क्या कह सकती हूँ, कट्टो ?"

"जीजी, आना चाहो, आ सकोगी। क्या और कुछ रोज नहीं रह सकतीं।"

"कट्टो, मन नहीं लगता। कोई बोलनेवाला नहीं मिलता। ऐसी जगह मैं रही भी नहीं कभी।"

"पाँच छः रोजसे मैं आई नहीं। क्या मालूम था, मेरी जीजीका मन नहीं लग रहा है। जीजी, न होता तुम्हीं बुला लेतीं। बुलानेपर सिरके बल आती। जीजी, कट्टोसे रूठोगी तो कट्टो क्या करेगी ?"

जीजी कुछ बोल नहीं सकी। कुछ 'नहीं हाँ' कर दिया। कट्टोको छोटा बनना आता है, और जिसे छोटा बनना आता है, उसे प्यार पाना

आता है। जब इस तरह पीछे पड़ जाती है तो कट्टोको प्यार न देना कठिन हो जाता है। सो ही गरिमाकी अवस्था है।

"जीजी, नाराज हुई हो तो बता दो। कुसूर हुआ हो तो बता दो. अब नही होगा। और देखो," उसने आँख मिलाकर, और फिर पैर छूकर, हाथ जोड़ते हुए कहा, "देखो हुआ सो माफ कर दो. .कर दिया न? देखो जीजी, कट्टोकी बुरी बात मनमे ले जाओगी तो ठीक नहीं। तुम्हारे मनको भी चैन नहीं मिलेगा, मैं तो यहाँ मरती रहूँगी ही।"

गरिमाने दोनों हाथ उसके कंधेपर रक्खे।

"कपड़े ठी..." कहते हुए सत्य भीतर आये। देखकर ठिठक गये। वह अब कट्टोके सामने पडते घबडाते हैं। पदध्वनिपर मुडकर कट्टोने देखा, सत्य हैं। उसने पैर छूकर, पूछा—

"तुम जा रहे हो?—जीजी फिर कब आयेंगी?"

"कह नहीं सकता।"

"बिल्कुल नहीं कह सकते?"

"कैसे कह सकता हूँ?"

"तो फिर कब मिलना हो?—कट्टोका कहा-सुना माफ कर देना। और कुछ हो तो लिखना। कट्टोको पढाया, अब उससे कुछ सेवा नहीं लेना चाहते?"

मास्टर चुप।

"तो मै जाती हूँ। जीजी, इनको कुछ हो जाय तो मुझे जरूर जरूर लिखना। और तुमसे जब बने यहाँ आना। घर तो तुम्हारा यही ह अब। और तुम दोनों माफ कर देना। कट्टो बड़ी भूलें करती है, बडी मूरख लड़की है। और तुम दोनों सुखी रहना। और कट्टोको भी कभी याद कर लेना, क्योंकि कट्टो तुम्हारी बहुत बहुत याद करेगी।"

कट्टो फिर एक बार दोनोंको नमस्कार करके और जीजीसे गले मिलकर चली गई।

सत्य अब जल्दी जल्दी किसी काममें नहीं लग जायेंगे तो रो पड़ेंगे, इससे झट झट कपड़े फैलाने और इकट्ठे करने लगे। कहा—

"जल्दी करो, जल्दी।"

गरिमाको आँसू छिपानेकी बहुत ज्यादे जरूरत नहीं है, इसलिए वह स्वतन्त्रतासे कपड़े भिगो रही है।

३३

गरिमा-सत्यका, और कट्टो-बिहारीका विवाह हो गया है। और बहुत कुछ काम हमारा खतम हो गया है। इक्कीसवीं सदीके अनुसार हम सन्तानके शौकीन नहीं हैं,—इसलिए उस बात तक कहनेके लिए ठहरेंगे नहीं।

सत्यने दिल्ली जाकर देखा, यह मकान ज्यादा खुला और अच्छा है। पत्थरका फर्श है, नल-बिजलीका आराम है। और भी सब सुविधाएँ ही सुविधाएँ हैं। इसलिए बाबूजी कहते हैं तो वह दिल्ली ही रहेगा।

रहना अब दिल्लीमें ही होने लगा। बिहारीपर भरोसा नहीं है। बिहारी कच्चा आदमी नहीं है कि किसीकी खातिर टूट जाय,—बाबूजी यह बहुत अच्छी तरह जानते हैं। इसीलिए सत्यको अपने पास बसाया है।

तो अब माँको भी गाँवसे बुला लिया जाय। माँ आई तो, पर बाप-दादोंका मकान छोड़नेका सदमा साथ लेकर आईं और थोड़े दिनों

बाद यह घर भी और यह लोक भी छोड गई। दो हफ्तेके अनन्तर गरिमाकी मॉका भी देह छूट गया।

तब घरके भीतरका बोझ गरिमाके सिरपर आया। उसने काफी अच्छी तरह निबाहा। पर निबाहनेमें नौकर अब काफी लगते हैं। गरिमाने नौकरोंसे निबटनेका भी एक काफ़ी जटिल काम बढा लिया है।

बाबूजी अब इधर ढीले हो चले हैं। बाहरकी दौड धूप सत्यके सिर आ पडी है। इस तरह सत्यके निर्बाध आदर्श-चिन्तनमें बाधा पडती है। वह, जो होता है, करता तो है, पर झींकते हुए, झिझकते हुए और शर्माते हुए।

अब बाबूजीने उसे समझाना शुरू किया है और गरिमाने टेढे ढगसे लेना। आदर्शकी आराधनाका काम उसकी निगाहमें कितना ही बड़ा काम हो, दूसरोंको विश्वास कराना कठिन है। लोगोंकी निगाहमें वह सब कुछ निठल्लेपनका बहाना है, अकर्मण्यताकी सफाईका नाम है। [illegible] दुनिया नाखुश रहती है, और फिर आदमी खुद भी अपनेसे नाखुश रहने लगता है।

गरिमा जब तब ऐसी चोटें करती है कि भीतर ही भीतर झुलस रहते हैं, पर कहते कुछ नहीं बन सकता। घरका जो अधिकार है, कहा जा सकता है वह गरिमाके अनुग्रहका फल है। और गरिमा इस सत्यका प्रयोग खूब होशियारीसे और खूब निशानेसे करना जानती है।

इधर बाबूजीने अदालतका थोडा-बहुत काम पहले ही लेना शुरू कर रक्खा था। अब ज्यादे ज्यादे लेने लगे। उधर ऊँच-नीच भी समझाते जाते थे। परिणाम यह हुआ कि एक रोज सत्यका नाम भी बाकायदा वकीलोंमें दर्ज हो गया।

धीरे धीरे ठाठ भी बढे, नखरे भी बढे और अधिकार-प्रयोग

भी,। जितनी वकालत कम चलती थी, उतने ही ठाठकी ज्यादा जरूरत थी, शायद व्यवसायकी नीतिके तौरपर। और जितनी ही वकालत कम चलती थी, उतना ही नखरे और अधिकार-प्रयोग तीखे होते जाते थे। मानों जो अदालतके खाली घटोंमें, सूट-बूट-सज्जित अवस्थामें, आत्म-दर्पके विचार बन्द हृदयमें उठते रहते हैं वे घरमें ढक्कन खुलते ही बदलेके साथ निकलते हैं।

बिहारी इम्तहान देकर चला ही गया है। वह पास भी हो गया और पास हुएको भी दस महीने होने आ गये। पत्र तो उसके आते हैं, पर पूरा पता नहीं लिखा होता। बाबूजी जानते हैं कि फिक्र और ढूँढ़से कुछ परिणाम न होगा, इससे चुप हैं।

बाबूजी अब गरिमासे कभी कभी तग दीख आते हैं। गरिमाका भी ख्याल है कि बाबूजी बुढ़ाकर चिड-चिड़े बन गये है। इसलिए अब वह उनकी बातको उतनी पर्वाहसे नहीं सुन सकती।

अब घर उसके हाथमें है। उस घरकी एक बात है?—दस बातें है। बाबूजीको वे सब कैसे समझाई जा सकती हैं? बाबूजी यह सब तो देखते नहीं, यों ही गरिमा बेचारीसे उलझ पडते हैं। उसे भी लाचार कुछ सीधी-सी कह देनी पडती है।

ऐसी अवस्थामें वह बिहारी कहाँ चला गया है! फिर फिर कर बेचारे बापको वही याद आता है। अब ज़रा अस्वस्थ रहते हैं। खाँसी उठती है, बदन दर्द करता रहता है। सत्य नियमसे बँधे दो वक्त आता है। अब कामकाजी आदमी है, वकील है, बहुत तो फुर्सत पाता नहीं। दस धंधे हैं, सौ झंझटें हैं। बाबूजी तो बीमार हैं,—जमीन-जायदाद, लेन-देनका भी सब काम उसीको भुगताना पडता है। लेकिन बाबूजी चाहते हैं कि दस बार आये, सो कैसे आये? अब फुर्सत निकालकर

दोसे ज्यादे बार आता है तो इशारे इशारेमें यह बात बाबूजीको समझाता है। बाबूजी आँख मीच लेते हैं,—मानों समझ गये हों, पर समझते नहीं, फिर वही उम्मीद करने लगते हैं।

हाय!—बिहारी कहाँ है? बेचारा बाप उसीकी याद करता है। उसका यह सफेद पका सिर बहुत कुछ जानता है, पर लाचार है। जानता है, बिहारी था जो सेकिंड-भर न छोड़ता उसे,—चाहे वकालत जाती चूल्हेमें। और वकालत नहीं जाती चूल्हेमें, जैसी कि अब सत्य उसे भेज रहा है। लेकिन बूढा लाचार है। बिहारी?—

तभी दुर्घटना हो गई। मोटर टकरा गई, वृद्धके चोट आई, सत्य बच गया। सत्य श्वसुरको अस्पताल पहुँचाते ही जरा घर आ गया है। पीछे ही उसके बिहारी अस्पताल पहुँच गया।

वृद्धने पहचान लिया, "आ गया बेटा!"

"आ गया बाबूजी।—बस अब अच्छे हुए, घर चलेंगे।"

"बिहारी, नहीं, दर्द बहुत है। दिन हो गये पूरे।"

"नहीं नहीं बाबूजी, अभी मैं कट्टोको दिखाऊँगा। और वह आपकी सेवा करेगी और आप अच्छे हो जाएँगे। कट्टो और कुछ जानती नहीं, सिवा सेवा करनेके। आपको वह चगा करके छोड़ेगी।"

"कहाँ है,—कहाँ है वह बेटा?"

"अब शाम तक पहुँची। तार दे दिया है।"

"मैं उसे नहीं जानता, तुझे जानता हूँ। तेरी पसन्द कभी गलत नहीं हो सकती।"

"बाबूजी, वह देवी है।"

"बिहारी, दर्द बहुत है। बोलो मत बेटा, बोलनेसे ..." बात आगे पूरी नहीं हो पाई।

कट्टो आई। कट्टोने सेवा की, आशीर्वाद पाया, सफेद पलकोंके नीचे रोती हुई आँखोंके कुछ बहुत मीठे आँसू पाये। और पिता मर गये।

मोटर कम्बख्त रास्तेमें खराब हो गई थी, भीड़में धीरेसे चली, यह और वह !—"हाय !" सत्यने कहा, "मैं आखिरी वक्त पिताके पास भी न रह सका !"

३४

अगले रोज यह चिट्ठी सत्यको मि०........एडवोकेटका चपरासी दे गया—

"बेटा सत्य, मेरे दो बेटे थे, बिहारी और सत्य। तुम्हे मैंने गरिमा दी, जिसपर मैंने सबसे ज्यादे प्यार वारा और जिसको मैंने सबसे कीमती चीज़ समझा। अब बाकी चीज बिहारीको दे जाता हूँ। मि०........एडवोकेटके यहाँ........बैंकके 'करण्ट एकाउण्ट' के अतिरिक्त मेरी सम्पत्तिका सब ब्योरा है। वह ठीक कर लेंगे। बिहारीको शायद इसकी ज़रूरत पड़े। तुम तो लायक हो, कमा लोगे और दुनियामें अपनी जगह बना लोगे ? पर बिहारीको तो उड़ानेके लिए शायद ये भी काफी न हों।

तुम्हारा—भगवद्दयाल।"

पढकर सत्यको गुस्सा हुआ,—बदल गये। वह अब इस मकानमें भी नहीं रह सकते। बिहारीके दानपर वह नहीं रहेंगे,—एक मिनट भी नहीं रहेंगे। ये सब विचार और उनका कारण समझाकर उन्होंने गरिमासे कह दिया। गरिमा मकान छोड़नेको राजी नहीं हुई। मत हो, पर सत्यका आत्मसम्मान इतना सस्ता नहीं है। तत्क्षण कुछ अपना सामान लेकर और नकद सौ रुपये लेकर वह चला गया। एक छोटा-सा घर

किराये लिया, और वहाँ रहने लगा। मि०..........एडवोकेटको लिख दिया—

"मि०.... ...एडवोकेट, मैंने मृत मि० भगवद्दयालकी जायदाद परसे कब्जा छोड़ दिया है। आप जब चाहे मुझे आफिस बुलाकर सब समझ सकते हैं। उनकी लड़की,—मेरी स्त्री अभी उसी मकानमें है। उसके लिए मैं जिम्मेदार नहीं हूँ।

आपका

......."

बिहारीको पता चला। बिहारीसे कट्टोको।

पता आखिर मकानका लगाया ही। एक खाटपर बैठा सत्य सोचमें है। जीवनपर दृष्टि डाल रहा है और उसे समझनेकी चेष्टा कर रहा है। उस सारे जीवनमें कोई रीढ नहीं दिखाई देती।

आहट हुई, आँखें उठीं, देखा, कट्टो है। जहाँ गरिमा नहीं आई—इंकार कर दिया, जहाँ अभी कोई भी आस बँधानेवाला नहीं, वहाँ कट्टो!—कट्टो, जिसको लांछित और अपमानित किया है! वही कट्टो!—क्या उपहास करने आई है?

"तुम घर क्यों छोड़ आये?"

"वह मेरा घर नहीं था।"

"यह कैसी बात कहते हो?"

"वह बिहारीका है।"

"वह क्या पराये हैं?"

"हाँ, पराये हैं।"

"हे हें, यह न कहो।"

"वह घर-भर मेरा पराया है।"

"हैं, यह क्या कहते हो? खबरदार, जो ऐसा कहा! मेरी जीजीको तुम—"

"देखी तुम्हारी जीजी ..।"

तब उसने गिरकर पैर पकड़ लिए—

"मेरी जीजीको तुम कुछ नहीं कह पाओगे। क्या मै तुम्हारी नहीं हूँ?"

"नहीं कोई नहीं हो। मैंने अपने हाथसे तोड़कर तुम्हे दूर फेंक दिया, और उस .."

"बस बस, मेरी खातिर बस। मैं तुमसे कहती हूँ, उन्होंने घरसे न आकर गलती नहीं की। तुम्हीं क्यों चले आये?"

"क्या मैं बेहया बनकर रहता?"

"मेरी प्रार्थना मानो, चलो। हाथ जोड़ती हूँ।"

"यह नहीं कर सकूँगा, कट्टो। माफ करना।"

"नहीं?"

"नहीं।"

"नहीं कर सकोगे?"

"और सब कर सकूँगा। यह नहीं।"

"और सब?"

"और सब,—हाँ। यह नहीं।"

"अपनी बातको याद रखना।" कहकर उसने चरण छुए और वह चली गई।

अगले रोज आई, चालीस हजारके नकद नोट सामने किये।

"न न न।"

"बोलो नहीं, कह चुके हो।"

"कट्टो!...."

"देखो, तुम जवान हार चुके हो।"

"कट्टो, मुझे नरकमें मत घसीटो।"

"हे, यह क्या अशुभ लाते हो मुँहपर!"

उन्हें रुपयेकी जरूरत थी। वह उनकी आदतमें पड़ गये थे। यही कमी थी जिसने 'न न न' को कम करते करते आखिर अनमने मनसे लेनेको बाध्य कर दिया। अब उनकी पैरोंमें पड़नेकी बारी आई। जो तना रहा, उसे रुपयोंने झुकाया। सत्य कट्टोके पैर छूनेको बढ़ा—

असह्य त्रासके भावसे झट पैर पीछे खींचकर वह बोली—हाथ जोड़ती हूँ, मुझे लज्जित न करो।

"कट्टो!"

"एक अच्छा-सा मकान लो। मेरी जीजी वहाँ रहेगी, यहाँ कैसे रहेगी?"

सत्य कुछ देर बेसुध-सा सुनता रहा। फिर हठात् स्वस्थ बनकर बोला-

"तुम्हारे कहनेसे सब करूँगा, नहीं तो .."

मुँहपर उँगली रखकर कट्टोने कहा—

"चुप!"

सत्य चुप।

"जीजीको मेरी कुछ मत कहना।—कहो।"

"कुछ नहीं कहूँगा।"

तब फिर कट्टो सत्यको पानी पानी हुआ छोड़कर चली गई।

३५

"अब?"

कट्टोने बिहारीसे पूछा—

"अब ?"

"अब हमारा यज्ञ आरम्भ होता है।"

"मैं क्या करूँ ?"

"गाँव जाओ। बच्चियोंको पढाना, उसीसे गुज़ारा चलाना।"

"तुम ?"

"मैं भी गाँव जाकर किसान बनता हूँ।"

"उस,—मेरे गाँवमें.. ?"

"नहीं। वहीं—दूर,—फिर भी पास। अलग, तो भी एक। कहीं दूर गाँवमें जाऊँगा।"

स्वर हठात् बदल गया, मानों उसमें कुछ कसक आ मिली। जिज्ञासा की—

"यह रुपया!"

"इसका उपयोग कुछ समझमें नहीं आता।"

"इतने पर्यटनसे इसका उपयोग नहीं समझ आया ?"

"नहीं। भिखारियोंको बाँटूँ, वह बढते हैं। किसानोंको दूँ, वह इसपर आसरा डालनेकी आदतमें पड़ जाते हैं। जिसे देता हूँ, वही उसके चस्केमें पड जाता है, और फिर परिश्रमसे कटता और जी चुराता है। उद्योग चलाऊं तो और रोग पीछे पड जाते हैं,—मशीनका और केन्द्रित सम्पत्ति और केन्द्रित व्यवसायका। पैदा करो, और फिर खपाओ। जहाँ श्रम केन्द्रित हो गया, वहाँ श्रमका मूल्य और श्रमकी असलियत घट गई, और पैदायश बढानेकी फिक्र हो गई। उसके लिए फिर बलात् खपत बढानेकी तरकीबें सोचनी पडती हैं। यह अपनी अपनी खातिर पैदायश और खपत बढानेकी प्रवृत्ति मेरे ख्यालमें बड़ी गडबड़ है। मेरे ख्यालमें यह पैसा ही गड़बड़ है। पैसेने परिश्रमका सम्मान नष्ट कर दिया और उसे किरायेकी चीज बना दिया।..."

" फिर ! "

" फिर क्या ? जिसका दाँव लगे मेरी सम्पत्ति लूट ले जाय। मेरी है वह किस बातकी ? मैंने वह कब कमाई है ? मैं तो कहता हूँ वकील, लुटेरे जो चाहें मेरा मकान ले लें, जो चाहें नकदी ले लें। मेरे पास जो भी पहले दस्तखत कराने आयगा, उसीको दस्तखत दे दूँगा। सोचूँगा बला टली। मेरी किसानीमें यह जायदाद और पैसे भी तो आफ़त ही डालेंगे। फिर क्या मुझे किसानी सूझेगी ? या तो आसाइश सूझेगी, नहीं तो बहुत हुआ, लेक्चर देना सूझेगा। इस सबसे कुछ भला नहीं होता। इससे छोड़ो पैसेका ख्याल। तुम अपनी बच्ची पढ़ानेकी बात सोचो, और हम अपने हल और बैलोंकी। क्यों ? "

" हाँ—आँ ! "

" तो ? "

" तो हम अलहदा होते हैं ? "

" हाँ। "

" प्रणाम। "

बिहारीने दोनों जुड़े हाथ थामकर झुके मस्तकपर चुम्बन लिया। कट्टोने प्रणत भावसे उसे स्वीकार किया। और दोनों फिर अलग अलग राह चल दिये।—न जाने कब मिलनेके लिए !

समाप्त

लेखककी अन्य रचनायें

कल्याणी	[उपन्यास]	२)
त्यागपत्र	,,	१।)
सुनीता	,,	२॥)
परख	,,	१॥)
सुखदा	,,	४)
विवर्त्त	,,	४)
वातायन	[कहानियाँ]	२॥)
पाजेब	,,	३)
एक रात	,,	३)
जयसन्धि	,,	३)
जड़की बात	[निबन्ध]	२॥)
पूर्वोदय	,,	४)